

卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

धर्मचक्रवर्ती, महामहोपाध्याय, जीवनपर्यन्त कुलाधिपति, वाचस्पति, महाकवि
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज
का राष्ट्रीय, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना का संवाहक

श्रीतुलसीपीठसौरभ

(मासिक पत्र)

सीतारामपदाम्बुजभक्तिं भारतभविष्यं जनतैक्यम्।
वितरतु दिशिदिशि शान्तिं श्रीतुलसीपीठसौरभं भव्यम्॥

वर्ष १३ मार्च २००९ (४, ५ अप्रैल को प्रेषित) अंक-७

संस्थापक-संरक्षक

श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य
स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

संरक्षक एवं प्रकाशक

डॉ० कु० गीता देवी (पूज्या बुआ जी)
प्रबन्धन्यासी, श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट

सम्पादक

आचार्य दिवाकर शर्मा
220 के, रामनगर, गाजियाबाद-201001
दूरभाष-0120-2712786, मो०- 09971527545

सहसम्पादक

डा० सुरेन्द्र शर्मा 'सुशील'
डी-255, गोविन्दपुरम्, गाजियाबाद-201001
दूरभाष : 0120-2767255, मो०-09868932755

प्रबन्ध सम्पादक

श्री ललिता प्रसाद बड़धवाल
सी-295, लोहियानगर, गाजियाबाद-201001
0120-2756891, मो०- 09810949921

सहयोगी मण्डल (ये सभी पद अवैतनिक हैं)

डा० श्रीमती वन्दना श्रीवास्तव, 09971149779
श्री दिनेश कुमार गौतम, 09868977989
श्री सत्येन्द्र शर्मा एडवोकेट, 09810719379
श्री अरविन्द गर्ग सी.ए., 09810131338
श्री सर्वेश कुमार गर्ग, 09810025852
डॉ० देवकराम शर्मा, 09811032029

पूज्यपाद जगद्गुरु जी के सम्पर्क सूत्र :

श्रीतुलसीपीठ, आमोदवन,
पो० नया गाँव श्रीचित्रकूटधाम (सतना) म०प्र०485331
0-07670-265478, 05198- 224413

वसिष्ठायनम् - जगद्गुरु रामानन्दाचार्य मार्ग
रानी गली नं०-1, भूपतवाला, हरिद्वार (उत्तरांचल)
दूरभाष-01334-260323

श्री गीता ज्ञान मन्दिर
भक्तिनगर सर्कल, राजकोट (गुजरात)
दूरभाष-0281-2364465

पंजीकृत सम्पादकीय कार्यालय एवं पत्र व्यवहार का पता
आचार्य दिवाकर शर्मा,
220 के., रामनगर, गाजियाबाद-201001
दूरभाष-0120-2712786, मो०- 09971527545

रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले

विषयानुक्रमणिका

क्रम सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
१.	सम्पादकीय	-	३
२.	वाल्मीकिरामायण सुधा (४७)	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	४
३.	श्रीमद्भगवद्गीता (७८)	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	८
४.	सकल अमानुष करम तुम्हारे	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	१०
५.	रक्षार्थ वेदानां चाध्येयं व्याकरणम्	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	१२
६.	कलियुग में राम-राज्य सम्भव है।	श्रीजगदीश प्रसाद गुप्त	१५
७.	नवयुवकों से	डॉ० रामदेव प्रसाद सिंह 'देव'	१९
८.	ब्रेललिपि के आविष्कारक-श्रीलुई ब्रेल	संकलनकर्ता-श्रीललिता प्रसाद बड़थवाल	२०
९.	श्रीराघव कृपा	श्रीरघुनन्दन दास 'मौनी'	२१
१०.	शिखा की वैज्ञानिक रहस्यपूर्णता	पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत	२२
११.	प्रेरणा का स्रोत है भगवान् श्रीराम का जीवन	-	२६
१२.	ताली बजाइये, स्वस्थ रहिये	डॉ० श्री एच्० एस्० गुगालिया	२९
१३.	व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक	-	३२

सुधी पाठकों से विनम्र निवेदन

१. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' का प्रत्येक अंक प्रत्येक दशा और परिस्थिति में प्रत्येक महीने की ४ तथा ५ तारीख को डाक से प्रेषित किया जाता है। पत्रिका में छपे महीने का अंक आगामी महीने में ही आपको प्राप्त होगा।
२. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' मंगाने हेतु बैंक ड्राफ्ट 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' के नाम से ही बनवाएँ तथा प्रेषित लिफाफे के ऊपर हमारा नाम तथा पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। मनीआर्डर पर हमारा नाम-पता ही लिखें प्रधान सम्पादक अथवा प्रबन्ध सम्पादक कभी न लिखें।
३. पत्रव्यवहार करते समय अथवा ड्राफ्ट-मनीआर्डर भेजते समय अपनी वह ग्राहक संख्या अवश्य लिखें जो पत्रिका के लिफाफे के ऊपर आपके नाम से पहले लिखी है।
४. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' में 'पूज्यपाद जगद्गुरु जी' से अभिप्राय धर्मचक्रवर्ती श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज समझा जाए।
५. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' में प्रकाशित लेख/कविता/अथवा अन्य सामग्री के लिए लेखक/कवि अथवा प्रेषक महानुभाव ही उत्तरदायी होंगे, सम्पादक मण्डल नहीं।
६. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' प्राप्त न होने पर हमें पत्र लिखें अथवा फोन करें। हम यद्यपि दूसरी बार पुनः भेजेंगे। किन्तु अपने डाकखाने से भलीप्रकार पूछताछ करके ही हमें सूचित करें।
७. डाक की घोर अव्यवस्था के चलते हमें दोषी न समझें। हमें और आपको इसी परिस्थिति में 'पूज्यपाद जगद्गुरु जी' का कृपा प्रसाद शिरोधार्य करना है।
८. सुधी पाठक अपने लेख/कविता आदि स्पष्ट अक्षरों में लिखकर भेजें। यथासमय-यथासम्भव हम प्रकाशित करेंगे। अप्रकाशित लेखों को लौटाने की हमारी व्यवस्था नहीं है।

सदस्यता सहयोग राशि

संरक्षक	११,०००/-
आजीवन	५,१००/-
पन्द्रह वर्षीय	१,०००/-
वार्षिक	१००/-

-सम्पादकमण्डल

श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट के स्वामित्व में मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ० कु० गीतादेवी (प्रबन्धन्यासी) ने श्री राघव प्रिंटर्स, जी-१७ तिरुपति प्लाजा, बेगम पुल रोड, बच्चापार्क, मेरठ, फोन (का०) 4002639, मो०-9319974969, से मुद्रित कराकर कार्यालय २२० के., रामनगर, गाजियाबाद से प्रकाशित किया।

सम्पादकीय-

सदाचार ही धर्म है

भारत आदिकाल से ही धर्मप्रधान देश रहा है। यह धर्म ही तो है जो मनुष्य और पशु में अन्तर करता है। पशु में धर्म नहीं है मनुष्य में धर्म है कहा गया है-

आहार निद्राभय मैथुनं च, सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।

धर्मो हि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

पर हमारे मन में यह जिज्ञासा हो सकती है कि धर्म क्या है? हम ध्यान रखें कि पूजा विशेष धर्म नहीं है विशेष वस्त्र धारण करना, विशेष प्रकार का आचरण धर्म नहीं है। वेदों में धर्म की परिभाषा इस प्रकार की गई है कि-

वेदप्रणहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद् विपर्ययः।

अर्थात् वेदों में जिस कर्म को करने की आज्ञा दी गई है वह धर्म है और इसके विपरीत जो है वह अधर्म है। दूसरे शब्दों में कहें तो हमारे महर्षियों तथा सन्तों ने जिस आचरण का अनुमोदन किया वह सदाचार ही धर्म है। 'सतां आचारः सदाचारः। मनु ने वेद, स्मृति, सन्तों का आचरण और अपना मन या आत्मा इन चारों को सदाचारण के आधार स्तम्भ माना है। महाभारत में व्यास जी ने भी कहा है-

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

धर्म का सर्वस्व सुनो और समझो। वह साररूप में यही है कि जो अपने प्रतिकूल हो अर्थात् जो स्वयं को अच्छा न लगे उस व्यवहार को दूसरों के साथ मत करो। गीता जी में धर्म की व्याख्या इस प्रकार की गई है-

धारणाद्धर्म इत्याहु धर्मो धारयते प्रजाः।

अर्थात् आचरण को हम जीवन में धारण करते हैं वही धर्म है। दूसरे शब्दों में अपना कर्तव्य ही धर्म है। प्रातःकाल उठकर सायं सोने तक के सम्पूर्ण क्रिया कलाप धर्म के अन्तर्गत हैं। धर्माचरण के बिना हमारा जीवन चल ही नहीं सकता। प्रातः उठना माता-पिता को, भगवान को, धरती माता को प्रणाम करना स्नानादि नित्यकर्म के पश्चात् अपने इष्टदेव का स्मरण अपने सम्प्रदाय के अनुसार पाठ, पूजा, भजन, कीर्तन तथा अपने कार्य को निष्ठापूर्वक ईमानदारी से करना यह सब धर्म के अन्तर्गत है। आज हमारे देश के कर्णधार जो 'धर्म निरपेक्षता' की बात करते हैं वह सर्वथा छलावा मात्र है। हम ध्यान रखें कि सदाचरण ही धर्म है जब सदाचार जीवन में नहीं रहेगा तो क्या जीवन नरक समान नहीं होगा? सदाचरण की उपेक्षा के कारण ही आज देश में अशान्ति, दुराचार और पापाचार का ताण्डव नृत्य हमें दिखाई पड़ रहा है। आज हम पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव में इतने आकण्ठमग्न हैं कि हमें कर्तव्याकर्तव्य का बोध नहीं रहा है और हम येन केन प्रकारेण ऐश्वर्य के साधन जुटाने में ही जीवन की सार्थकता मानने लगे हैं। हम भूल गये हैं कि-

एतद् देशप्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

अर्थात् हम अपने महापुरुषों से अपने चरित्र की, आचरण की शिक्षा ग्रहण करें। जबकि आज हम अपने बड़ों की उपेक्षा करने में गौरव का अनुभव कर रहे हैं। जो व्यक्ति हमसे धर्माचरण की चर्चा करता है उसकी हम रुढ़िवादी या पुराणपन्थी कहकर निन्दा करते हैं इस दुष्प्रवृत्ति को त्यागकर हम सदाचरण अपनायें तभी हमारा सर्वविध कल्याण होगा। नमो राघवाय।

आचार्य दिवाकर शर्मा

प्रधान सम्पादक

वाल्मीकिरामायण सुधा (४७)

(गतांक से आगे)

□ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

गीतावली जी में प्रमाण है- “तेहि माथ ज्यों रघुनाथ अपने हाथ जल अंजलि दई” शबरी धन्य हो गई।

शबर्या पूजितः सम्यक् रामो दशरथात्मजः।

पम्पातीरे हनुमता संगतो वानरेण ह॥

परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम आज परमभागवत से मिलने आ रहे हैं। एक व्यक्ति को पत्नी के अतिरिक्त परिवार में न्यूनतम कितने व्यक्ति चाहिए? तीन चाहिए। माता, पिता और पुत्र। गृध्रराज जटायु श्रीराम को पिता मिल गये, शबरी माता मिल गई। शबरी ने कहा सरकार! आप पम्पासर जाइये। वहाँ आपको सुग्रीव तो मिलेंगे ही। सुग्रीव के साथ साथ आपको एक बड़ा प्यारा प्यारा बेटा मिलेगा। और वास्तव में आज वह दिन आया। महर्षि वाल्मीकि कहते हैं-

तौ तु दृष्ट्वा महात्मानौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।

वरायुधधरौ वीरौ सुग्रीवः शंकितोऽभवत् ॥

सुग्रीव ने जब धनुष बाण लिए हुए, महात्मा श्रीरामलक्ष्मण दोनों भाइयों को देखा-

अति सभीत कह सुनु हनुमाना।

पुरुष जुगल बलरूप निधाना॥

तो अत्यन्त भयभीत होकर कहा- हनुमान जी सुनिये। क्या ये हमको मारने आ रहे हैं। तब हनुमान जी ने कहा-

अहो शाखामृगत्वं ते व्यक्तमेव प्लवंगम।

लघुचित्ततयाऽऽत्मानं न स्थापयसि यो मतौ॥

हे सुग्रीव! आज आपका वानरत्व स्पष्ट हो गया।

इतना छोटा चित्त है, कि आप परमात्मा को अपनी बुद्धि में स्थापित नहीं कर रहे हैं। आप ऐसा क्यों सोच रहे हैं कि ये आपको मारने आ रहे हैं। ये आपको मारने नहीं ये तो आपको तारने आ रहे हैं। आप समझ नहीं पा रहे हैं-

उनकी करुणा में कोई कमी है नहीं

पात्रता में हमारी कमी रह गई।

उनकी ममता में कोई कमी है नहीं

पुत्रता में हमारी कमी रह गई॥

देव दुर्लभ दिया देह प्रभु ने हमें

जो है आधार शुभ साधनों का विमल।

उनकी क्षमता में कोई कमी है नहीं

योग्यता में हमारी कमी रह गई।

प्रति दिवस आके मिलते हैं हमको प्रभु

फिर भी हमने नहीं पहचाना उन्हें।

रवि के उगने में कोई कमी है नहीं

नेत्रता में हमारी कमी रह गई।

सुग्रीव ने कहा- हनुमान जी आप मेरे सामने उनसे बात कीजिए। ठीक है। यहाँ आप महर्षि वाल्मीकि जी की शब्दावली देखिए-

कपिरूपं परित्यज्य हनुमान् मारुतात्मजः।

भिक्षुरूपं ततोभेजेऽशठबुद्धितया कपिः॥

हनुमान जी महाराज ने अपना वानररूप छोड़ा और एक भिक्षुक का रूप बनाया और सोचा कि आज प्रभु से मैं भीख माँगूँगा। मैं राघव जी से कहूँगा- तू दयालु दीन हौं तू दानि हौं भिखारी। हौं प्रसिद्ध पातकी तू पापपुंज हारी। तू दयालु....

रावण ने भिक्षा माँगी थी सीता जी से और हनुमान जी भिक्षा माँगेंगे श्री राघव से। रावण ने छल किया था हनुमान जी छल नहीं करेंगे। हनुमान जी ब्राह्मण का वेश बना रहे हैं-

कंचन वर्ण विराज सुवेशा।

कानन कुण्डल कुंचित केशा।

यहाँ हनुमान जी को सुवेशा कैसे कह दिया गया। क्योंकि-

कियेउ कुवेश साधु सनमानू।

जिमि जग जामवन्त हनुमानू।।

हनुमान जी के कान में कुण्डल कब से बना? बाल उनके घुँघराले कहाँ हैं?

कपिश केश कर्कश लघु.....।

इस विषय में कहना चाहता हूँ कि एक भ्रान्ति चली हुई है। पढ़े लिखे लोग अधिक भ्रान्ति करते हैं। कुछ लोग कहने लगे हैं कि हनुमान चालीसा गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज की रचना नहीं है। यह सत्य नहीं है, वन्दनपाठक की दी हुई प्रति के अनुसार काशीनागरी प्रचारिणी सभा ने गोस्वामी तुलसीदास जी के रामचरितमानस के अतिरिक्त ११ ग्रन्थ छापे तो सर्वत्र परम्परा चल पड़ी कि १२ ग्रन्थ हैं। यद्यपि ऐसा नहीं है, मैं विश्वासपूर्वक कहता हूँ कि हनुमान चालीसा भी गोस्वामी तुलसीदास जी की ही रचना है। अभी अभी जो नया अनुसन्धान हुआ है उसके अनुसार श्री तुलसीदास जी महाराज के द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या ५२ तक पहुँच चुकी है। हनुमान चालीसा तो गोस्वामी जी की बहुत प्रामाणिक रचना है। कुछ लोग कहते हैं कि दारागंज प्रयाग में एक तुलसीदास नाम के महात्मा रहते थे यह उनकी रचना है। कुछ लोग इसे बीसवीं शताब्दी की रचना बताते हैं। हमने उनका खण्डन करते हुए बताया और कोर्ट में भी मैंने यह बात बताई कि हनुमान चालीसा

गोस्वामी तुलसीदास जी की इसलिए रचना है कि यह तो परम्परा से, अभिलेखों से और इतिहास से सिद्ध हो गया है कि जब भारतवर्ष में अंग्रेजों का शासन था उस समय कुछ सामान्य लोगों को पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के कुछ लोगों को अंग्रेज बहलाकर मारीशस ले गये। वहाँ से ये लोग आ नहीं पाए। वहीं उन्होंने अपने सम्बन्ध किये। इनके पूर्वजों के नाम पर इनके सरनेम बने। वहाँ न कोई ब्राह्मण न क्षत्रिय था अंग्रेजों के आदेश पर इन लोगों ने परस्पर सम्बन्ध स्थापित किये। उस समय भी हिन्दुत्व की रक्षा कैसे हुई थी इसके लिए ये मजदूर तीन वस्तुएँ अपने साथ ले गये थे। श्रीतुलसीकृत रामायण, सत्यनारायण कथा की पुस्तक और हनुमान चालीसा। दिन भर अंग्रेजों का डण्डा खाकर काम करते थे, रात में मोर के पंख से रामायण की प्रति उतारते थे (लिखते थे) हनुमान चालीसा उतारते थे और एक दूसरे को दे देते थे। इतना कष्ट सहकर उन्होंने हिन्दू धर्म की रक्षा की। यदि हनुमान चालीसा बीसवीं शताब्दी की होती तो अठारहवीं शताब्दी में मारीशस कैसे पहुँच जाती? इसलिए मैं बहुत विनम्रता से निवेदन कर रहा हूँ कि ऐसा भ्रमपूर्ण कथन हमें नहीं कहना चाहिए। हनुमान चालीसा गोस्वामी जी की सर्वप्रथम रचना है और हनुमान चालीसा का पाठ करके हजारों रामानन्दीय परम्परा के साधु सिद्ध बन बैठे। इतना सुन्दर कोई ग्रन्थ हो ही नहीं सकता। आप यह जानकर बहुत प्रसन्न होंगे कि हनुमान चालीसा का भी वही महत्त्व है जो श्रीरामचरितमानस का है। कोई आपसे सनातन धर्म के सबसे छोटे ग्रन्थ के विषय में पूछे कि ऐसा ग्रन्थ बताइये जिसमें सनातन धर्म के समस्त सिद्धान्त आ गये हैं तो आप विश्वासपूर्वक कह दीजिए कि श्रीहनुमान चालीसा है। चारों वेदों के, अठारहों पुराणों के, अठारहों स्मृतियों के सिद्धान्त अर्थात् सारे सनातन

धर्म के सिद्धान्तों का सारांश यदि किसी छोटे से छोटे ग्रन्थ में है तो वह हनुमान चालीसा है। उसे अपनी जेब में रखे रहिए सारा सिद्धान्त सुरक्षित रहेगा। हमारा तो सिद्धान्त है जो वन्दे मातरम् कहेगा जो श्रीराम जी को श्रीकृष्ण जी को प्रणाम करेगा हमारे सनातन धर्म पर विश्वास करेगा, जिसको विकलांगों के प्रति भगवद् बुद्धि होगी उसी को हमारे यहाँ सम्मान प्राप्त होगा। मेरे इस निवेदन को ध्यान से सुन लीजिए और गाँठ बाँध लीजिए कि प्रतिदिन प्रेम से श्रीहनुमान चालीसा का पाठ किया करो। पाठ शुद्ध और निष्ठापूर्वक होना चाहिए तो आप पूर्ण स्वस्थ रहेंगे। हिन्दू धर्म की सुरक्षा होती रहेगी। आइये इसकी चौथी पंक्ति पर विचार करें। शंका यह की है कि एक ओर तो 'कियेहु कुवेश साधु सनमानू' और उदाहरण में दिया 'जिमि जग जामवन्त हनुमानू' हनुमान जी महाराज को कहा कि इनका वेश कुवेश है। यहाँ लिखा 'कंचन वर्ण विराज सुवेशा' अब आप विचार कीजिए वानर को कौन कुण्डल पहनायेगा? उनके केश तो 'कर्कश लघु' हैं फिर कुंचित केश क्यों कहा? इसका उत्तर यह है कि इस विषय में शंका नहीं करनी चाहिए। यह झाँकी तब की है जब हनुमान जी सुग्रीव के कहने से ब्राह्मण वेश बनाकर भगवान राम के पास आ रहे हैं—

कंचन वर्ण विराज सुवेशा।

कानन कुण्डल कुंचित केशा।।

शुद्ध ब्राह्मण का वेश बनाकर हनुमान जी गये। हनुमान जी जानते हैं कि राम जी को ब्रह्मचारी ब्राह्मण बहुत प्रिय है। आज के ब्रह्मचारियों का चेहरा देखो हर समय पौने बारह बजे रहते हैं। चेहरे पर कोई तेज नहीं है। हनुमान जी महाराज बहुत सुन्दर लग रहे हैं। ब्राह्मण गोरा बहुत सुन्दर लगता है। हनुमान जी महाराज श्रीरामलक्ष्मण जी के पास जा रहे हैं। श्रीराम ने हनुमान जी को दूर से देखा आँखें तृप्त हो गईं। स्वर्णमृग खोज

रहे थे, सीता जी ने कहा था कि स्वर्णमृग ले आना। दो विकल्प कहे थे— यदि जीवित पकड़ लेंगे तो पालेंगे यदि मार डालेंगे तो मृगछाला ले आयेंगे। भगवान ने कहा दोनों काम करूँगा, मारीच को मारकर छाला ले आऊँगा और मारुति को पाऊँगा तो उनको पालूँगा। राम जी के जीवन में दो मृग मिले मारीच है कपटी स्वर्णमृग और मारुति स्वर्णमृग है निष्कपट।

विप्ररूप धरि कपि तहँ गयऊ।

माथ नाइ पूछत अस भयऊ।।

कितना सुन्दर दृश्य होगा परमात्मा का। भगवान श्रीराम लक्ष्मण सामने खड़े हैं। हनुमान जी ने प्रतीक्षा की। समस्या इस बात की है कि कौन किसको प्रणाम करे। राम जी जानते हैं कि नकली ब्रह्मचारी है और हनुमान जी भी जानते हैं कि नकली क्षत्रिय हैं। दोनों एक दूसरे को जानते हैं, अन्ततोगत्वा हनुमान जी ने सोचा मैं ही प्रणाम कर लेता हूँ। झुककर धीरे से बोले—

धैर्यवन्तौ सुवर्णाभौ कौ युवां चीरवाससौ।

निःश्वसन्तौ वरभुजौ पीडयन्ताविमाः प्रजाः।।

आप कौन हैं? चीरवस्त्र धारण करने वाले, विशाल भुजाओं वाले आपका क्या परिचय है?

को तुम श्यामल गौर शरीरा।

क्षत्रिय रूप फिरहु बन बीरा।।

आप लोग कौन हैं? महर्षि वाल्मीकि जी कितना सुन्दर लिखते हैं—

पम्पातीररुहान् वृक्षान् वीक्षमाणौ समन्ततः।

इमां नदीं शुभजलां शोभयन्तौ तपस्विनौ।।

इस सुन्दर नदी सरीखी पम्पा को सुशोभित करते हुए आप दोनों वीर कौन हैं? पक्षी मृगों को आप भयभीत कर रहे हैं। आपके कोमल चरण हैं आप पैदल चले आये, आपके चरणों को कष्ट नहीं हुआ? हनुमान जी ने भगवान की भुजाओं को देखा और कहने लगे—

सिंहस्कन्धौ महोत्साहौ समदाविव गोवृषौ।

आयताश्च सुवृत्ताश्च बाहवः परिघोपमाः॥

वाल्मीकि जी का काव्य कौशल अद्भुत है कालिदास तो किसी भी जन्म में इनके चरणों की धूलि की पात्रता भी नहीं पा सकते। वाल्मीकि जी का यदि कोई अनुकरण कर सका तो एक ही महापुरुष हुआ। वाल्मीकि जी को यदि कोई छू सकता है तो वाल्मीकि ही छू सकता है और वाल्मीकि जी के अवतार केवल गोस्वामी तुलसीदास जी ही छू सकते हैं और कोई भी वाल्मीकि जी को छू नहीं सकता। वाल्मीकि जी कहते हैं-

सर्वभूषणभूषार्हाः कथं नैव विभूषिताः।

आपकी भुजाएँ तो समस्त आभूषणों को धारण करने योग्य हैं तो भी आपने इन्हें विभूषित क्यों नहीं किया है।

की तुम तीन देव में कोऊ।

नर नारायण की तुम दोऊ॥

क्या आप तीनों देवताओं में से कोई हैं? श्रीराम लक्ष्मण चुप रहे तब हनुमान जी ने कहा- मैं इतना बोल रहा हूँ आप उत्तर क्यों नहीं दे रहे हैं। मैं अपना परिचय बता रहा हूँ। मैं ब्रह्मचारी हूँ, सुग्रीव नामक धर्मात्मा को उनके भाई बालि ने निकाल दिया है, मैं स्वयं उनका मंत्री हनुमान आपके पास आया हूँ। आप भी अपना परिचय दीजिए। एक ब्रह्मचारी के प्रति आदर होना चाहिए लक्ष्मण! ये कितना सुन्दर बोल रहे हैं-

संस्कारक्रमसम्पन्नामद्भुतामविलम्बिताम्।

उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहर्षिणीम्॥

सारे व्याकरण के संस्कारों से सम्पन्न, न तो विलम्बित और न विस्तीर्ण, हृदय को हर्षित करने वाली इतनी सुन्दर कल्याणी वाणी में बोल रहे हैं।

हम लोग जब पढ़ते लिखते नहीं तब कभी कभी इतना गड़बड़ हो जाता है कि आश्चर्य हो जाता है। 'भई प्रगट कुमारी भूमि विदारी' बहुत सरल रचना है पर यह स्तुति जब किसी मूर्ख के चक्कर में पड़ती है तो 'अस्तुति सिय केरी प्रेम लतेरी' तक तो ठीक कहते हैं। पर आगे 'परन सुचेरी' कहते हैं तो हम पूछते हैं कि 'परन' क्या है? वहाँ 'चरण सुचेरी' शब्द है। इसी प्रकार 'परधन मोद निकाय' यहाँ 'परधन' क्या है? वहाँ वरधन है परधन नहीं। एक पुजारी जी हैं वे बड़ी निष्ठा से भगवान की पूजा करते हैं परन्तु इतने कम पढ़े लिखे हैं कि भगवान का आनन्द है। अपने यहाँ जब हम सन्ध्याकालीन आरती करते हैं तो बहुत से दोहे पढ़े जाते हैं उसमें-

गुरु मूरति मुख चन्द्रमा सेवक नयन चकोर।

दोहे के अंश को आज भी वे पुजारी जी यही बोलते हैं-

गुरु मूरख मुख चन्द्रमा सेवक नयन चकोर।

मैंने उनको बार बार समझाया कि 'गुरु मूरख मुख चन्द्रमा' नहीं है पर वो कहते हैं कि मुझे जैसा याद है मैं तो वही कहूँगा। हमने कहा कि तुम जैसे को चेला बनाकर गुरु निश्चित मूर्ख हो ही गया। इन लोगों के मुख से जब 'भवाब्धिशेतं भरताग्रजं तं' सुनिये तो ये 'भरतागजेन्द्र' कहते हैं। इन्हें कैसे समझाया जाय? कभी कभी अशुद्ध सुनकर बहुत कष्ट होता है। निवेदन यह है कि हनुमान जी महाराज इतनी सुन्दर वाणी बोल रहे धाराप्रवाह बोल रहे हैं अशुद्ध नहीं हो रहा है। राघव कहते हैं- लक्ष्मण!

अनया चित्रया वाचा त्रिस्थान व्यंजनस्थया।

कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासेररेरपि॥

क्रमशः.....

श्रीमद्भगवद्गीता (७८)

(गतांक से आगे)

(विशिष्टाद्वैतपरक श्रीराघवकृपाभाष्य)

भाष्यकार-धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

संगति- अब अर्जुन प्रश्न करते हैं कि पूर्व श्लोक में कहा हुआ इदं पदार्थ क्या है? इस पर भगवान कहते हैं।

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।

कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च॥ ३।३९

रा० कृ० भा० सामान्यार्थ- हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! अग्नि के समान भी पूर्ण न किये जा सकने वाले कामरूपधारी इस ज्ञानी जनों के नित्य शत्रु द्वारा यह ज्ञान आवृत अर्थात् ढक जाता है।

व्याख्या- आवृतं शब्द में बाहुलकात् वर्तमान काल में क्त प्रत्यय हुआ है। चकार इव के अर्थ में है। दुष्पूरेण शब्द खल् प्रत्यय से बना है। इस प्रकार भगवान ने काम को ज्ञानी का नित्य शत्रु बताकर अर्जुन को आध्यात्मिक युद्ध करने की भी प्रेरणा दी। ॥श्री॥

संगति- यह काम कहाँ रहता है? इस पर भगवान कहते हैं-

इन्द्रियाणि मनोबुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।

एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्॥ ३।४०

रा० कृ० भा० सामान्यार्थ- इन्द्रियाँ मन और बुद्धि ये बारह काम के निवास स्थान कहे गये हैं। इन्हीं के द्वारा यह ज्ञान को ढक कर जीवात्मा को मोहित कर लेता है।

व्याख्या- सामान्य शत्रुओं के तो छः ही दुर्ग होते हैं परन्तु इस कामरूप शत्रु के दस इन्द्रियाँ मन तथा बुद्धि ये बारह दुर्ग हैं। यही आश्चर्य है। इन्हीं बारह दुर्गों को माध्यम बनाकर यह ज्ञान को ढकता है और जीवात्मा को मोहित करके उसके मन में वशी हुई मुझ परमात्मा की स्मृति को समाप्त कर देता है। इसीलिए रासपंचाध्यायी में काम को दण्डित करने के लिए ही भगवान ने ब्रज सुन्दरियों के बाहु १. प्रसार २. परिरम्भ ३. करालभन ४. अलकालभन ५. उरुवालभन ६. नीव्यालभन ७. स्तनालभन ८. नर्म ९. नखाग्रपात १०. छ्वैल्य ११. अवलोक १२. हसित इन बारह शस्त्रों से काम के दस इन्द्रिय तथा मन बुद्धि इन बारह दुर्गों को नष्ट किया।

बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरुनीवीस्तनालभन नर्म नखाग्रपातैः।
क्ष्वैल्यावलोकहसितैर्ब्रजसुन्दरीणामुत्तंभयन् रतिपतिं रमयाञ्चकार॥

मा० १०/२९/४६

यहाँ ब्रजसुन्दरीणाम् का अन्वय प्रथम द्वितीय चरण से होगा और रतिपतिं पद स्वतन्त्र है।

उत्तंभयन् का अर्थ है ऊपर आकाश में लटकाते हुए अर्थात् ब्रज सुन्दरियों के बाहु प्रसार आदि बारह क्रिया कलापों से कामदेव के बारह किलों को ध्वस्त करके भगवान कृष्ण ने बिना घर-बार वाले काम को ऊपर आकाश में लटका दिया और फिर गोपियों को अपने चरण में रमण कराया॥श्री॥

संगति- अब मुझे क्या करना चाहिए? अर्जुन के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए मधुसूदन कहते हैं-
तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।

पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञान नाशनम्॥३॥४१

रा० कृ० भा० सामान्यार्थ- संस्कृत में ऋषभ शब्द के सिंह और श्रेष्ठ ये दो अर्थ होते हैं। यहाँ दोनों ही अभिप्रेत हैं। हे भरतवंश में सिंह के समान श्रेष्ठ अर्जुन सर्वप्रथम तुम इन्द्रियों का नियन्त्रण करके ज्ञान और विज्ञान के नाशक इस पापी काम को पशुओं की भाँति मार डालो।

व्याख्या- आदौ शब्द का तात्पर्य है भीष्मादि के साथ युद्ध करने से पूर्व काम के दस रूप इन्द्रियों को नियन्त्रित करो। स्वस्वरूप के जानने को यहाँ ज्ञान कहा गया है और परस्वरूप के जानने को विज्ञान। काम इन दोनों को नष्ट कर देता है। इसलिए इस पापी को मारो। यदि अर्जुन को ज्ञानमय अधिकार न होता तो ज्ञानियों के नित्य शत्रु काम को मारने के लिए न कहते।

संगति- भगवान् अर्जुन को धैर्य धारण कराते हैं कि तुम चिन्ता मत करो क्योंकि तुम आत्मा हो। अतः कह रहे हैं-

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।

मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥ ३॥४०

रा० कृ० भा० सामान्यार्थ- इस श्लोक में पूर्व श्लोक से त्वं पद की अनुवृति होगी। हे अर्जुन स्थूल शरीर से सूक्ष्म इन्द्रियाँ होती हैं। इन्द्रियों से सूक्ष्म मन, मन से सूक्ष्म बुद्धि, होती है और जो बुद्धि से सूक्ष्म जीवात्मा है वह तुम्हीं हो।

व्याख्या- यहाँ 'पर' शब्द सूक्ष्मता का वाचक है। इसी प्रकार कठोपनिषद् में दो श्रुतियाँ पढ़ी गयी हैं।

इन्द्रेभ्यः पराः ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।

मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः॥

क० उ० १/३/१०

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः।

पुरुषात् परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः॥

संगति- अब भगवान् प्रकरण का उपसंहार करते हैं।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।

जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥३॥४३

रा० कृ० भा० सामान्यार्थ- हे महान् भुजा वाले अर्जुन! इस प्रकार आत्मा को बुद्धि से सूक्ष्म जानकर और उसे मुझ परमात्मा द्वारा स्वस्थ कराकर जटिलता से वश में आने वाले इस कामरूप शत्रु को मार डालो।

व्याख्या- यहाँ तृतीयान्त आत्मा शब्द परमात्मा परक है। इस प्रकार मेरी सहायता से पहले कामरूप शत्रु को मारो फिर अन्य शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लोगे। ॥श्री॥

गीता अध्याय तृतीय पर रामभद्र आचार्य।

राघव कृपा भाष्य करि प्रभु पुरवैं सब काज॥

इति श्री तुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्य-
स्वामीरामभद्राचार्यप्रणीत श्रीराघवकृपाभाष्ये
श्रीमद्भगवद्गीता कर्मयोग नाम तृतीयोऽध्यायः

॥श्री राघवः शंतनोतु॥

क्रमशः.....

(गतांक से आगे)

सकल अमानुष करम तुम्हारे

□ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

कहा- क्यों? क्या पृथ्वी वीरविहीन हो गयी है? उन्होंने कहा- बिल्कुल। अरे, भाई, अगर वो रघुबीर विहीन कहते तब मेरा अपमान होता! मैं तो रघुबीर हूँ, वीर तो हूँ नहीं मैं। उन्होंने थोड़े ही कहा कि रघुबीर बिहीन मही मैं जानी! तब लक्ष्मण शांत हुए। तब राघवेन्द्र जी को विश्वामित्र जी ने कहा- 'उठहु राम भंजहु भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा।' अब सूर्योदय हो रहा है- 'उदित उदयगिरि मंच पर, रघुबर बाल पतंग। बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग।' अहाहा! सुमित्रा जी यही कहती हैं- 'कमठ पीठ पबि कूट कठोरा। नृप समाज महुँ शिवधनु तोरा।' अब सारे राज समाज के पस्त होने पर प्रभु आ रहे हैं। देखिए, उनकी बाल्यावस्था सबको कष्ट दे रही है। ये धनुष नहीं तोड़ सकते। सभी लोग चकित हैं। जनक जी ने भी जानकी मंगल में कह दिया और गीतावली में भी कहा कि महाराज मुझे कोई चिन्ता नहीं है चाहे मेरा प्रण रहे या जाये पर 'रहे रघुनाथ की निकाइ नीकी नीकी नाथ, राम जी के मुखारविन्द पर उदासी नहीं आनी चाहिए नाथ। जनक जी कह रहे हैं कि धनुष नहीं टूटेगा तो राघव जी उदास हो जाएँगे। राघव जी उदास न हों, मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो चाहे भाड़ में चली जाय। जनक जी भी जानते हैं कि बालक धनुष नहीं तोड़ सकता। सुनयना जी भी कह ही रहीं हैं कि सारे लोग मूर्ख हैं, अरे कोई महाराज से कह देता, ये बालक इतना बड़ा हठ करता? रावण वाणासुर जिस धनुष को नहीं उठा पाये उसको राजकुमार उठाएगा? बालहंस कहीं मंदरा चल को ले सकता है? सब कह रहे हैं। अंततोगत्वा सखी ने समाधान किया कि नहीं, तेजवान जो होते हैं उनमें बड़े छोटे का विचार नहीं होता है। उसने जो विभूतियों के नाम गिनाये वो तो विचित्र है। कहा कि नहीं देख रहे हो कुंभज को?

कुंभज ने सागर को सोखा कि नहीं सोखा, छोटे से कुंभज ने? इसी प्रकार सूख जाएगा ये सागर। रविमंडल छोटा सा होता है। पर अन्धकार दूर करता है कि नहीं? छोटा सा मंत्र क्या हाथी को वश में नहीं कर लेता? क्या कामदेव ने फूल के वाण से सारे संसार को वश में नहीं किया? चार विभूतियों के नाम तो गिनाए। उन्हें विश्वास हो गया। पर सीता जी को कौन समझाये? अहाहा! सीता जी ने यही कहा- पिताजी, क्या कर रहे हो? स्वयं कह रही हैं- क्या बताऊँ। कहाँ ये कछुए के पृष्ठ जैसा कठोर धनुष मानो ये संकेत हुआ कि आप कछुए की पीठ से चिन्ता करती हैं, क्या राम जी ने कमठावतार (कच्छपावतार) नहीं ले लिया था? ये तो कमठ के भी अवतारी हैं, चिन्ता क्यों? सीता जी चकित हो रही है। बार-बार कहती हैं- भगवान क्या करूँ! 'अहह तात दारुन हठ ठानी।' सभी भयभीत हैं। कोई पिताजी को कुछ भी नहीं कह रहा है। 'कहँ धनु कुलिसहु चाहु कठोरा।' वज्र से भी यह कठोर है। मानो राम जी ने कहा- वज्र से भी कठोर है तो क्यों चिन्ता करती हो? मेरे चरण में वज्र की रेखा है, कुचल दूँगा इसको। 'ध्वज कुलिस अंकुश कंजयुत वन फिरत कंटक किन लहे।' क्या करूँ। अरे, 'सिरिस सुमन कत बेधिय हीरा।' सिरिस के फूल क्या हीरा बेध सकेगा? नहीं टूट सकता यह धनुष। इसलिए, हे धनुष, सारी सभा की बुद्धि भ्रष्ट है। मैं क्या करूँ? बोले- 'निज जड़ता लोगन पर डारी। होहु हरुअ रघुपतिहिं निहारी।' सीता जी ने कह दिया कि अपनी जड़ता को लोगों पर डाल दो। ये, इनकी चेतनता से क्या लाभ हमारा? इन्हें जड़ बनाओ। और 'होहु हरुअ रघुपतिहिं निहारी', कितना हल्का हो जाऊँ? बोले- 'रघुपतिहिं निहारी' राम जी को देखकर हल्के हो जाओ। जितना ये उठा सके उतने हल्के हो

जाओ। क्या बात है! एक मिलीग्राम यदि उठा सके तो उतने हल्का बन जाना। जितना ये उठा सके हल्का बन जाओ। और वही हो रहा है, मित्रों। आप प्रकरण तो जानते ही हैं। अंततोगत्वा वही हुआ। भगवान राम ने इसको तोड़ा। 'कमठ पीठ पबि कूट कठोरा। नृप समाज महँ शिवधनु तोरा।।' एक क्षण में उस शिव धनु को मध्य से तोड़ डाला। 'यो लोकवीर समितौ धनुरैशमुग्रं, सीतास्वयंवर गृहे त्रिशतोपनीतम्। आदाय बालगजलील इवेक्षुयष्टिं, सञ्जीकृतं नृप विकृष्य बभञ्ज मध्ये।।' और, हनुमान जी ने तो कहा- नहीं। हनुमान जी ने कहा- राम जी ने तो तोड़ा ही नहीं वो अपने आप टूट गया (ससुरा)। अपने आप टूट गया? कहा- हाँ। क्यों? हनुमान जी ने कहा- इसलिए टूटा- उसने सोचा कि मुझे पुरश्चरण करना चाहिए। प्रायश्चित्त करना चाहिए। क्यों? उसने कहा कि दो पापियों के हाथ में मैं पड़ गया हूँ। कौन दो पापी? धनुष ने कहा कि शिव जी ने ब्रह्मा जी के पाँचवे सिर को काट दिया था और कामदेव को मारा तो उनका भी पाप लगा। उनके हाथ में मुझे स्पर्श कराया गया। और एक बार परशुराम ने भी मुझे छुआ था जिनको माता के वध का पाप लगा है और क्षत्रान्तक का पाप लगा है। अब ये दो पापी हाथों में रहने से पापी बन गया हूँ। तो मेरा शरीर अब कैसे पावन होगा? तो शंकर भगवान का धनुष, राम जी के कर कमल को देखा प्रयाग के समान। अरे कहा, बड़ा अच्छा लग गया। तो राम जी के कर-कमल रूप प्रयाग को देखकर उसने अपने आप ही अपने शरीर को छोड़ दिया, राम जी ने नहीं तोड़ा। 'तद्ब्रह्मातृ वधपातकिमन्मथारिक्ष-त्रान्तकारिकरसंगम पापभीत्या। ऐशं धनुर्निजपुरश्चरणाय नूनं देहं मुमोच रघुनन्दन पाणितीर्थे।।' रामचरितमानस में जनक के दूतों ने कहा कि राम जी ने इतने मस्ती में तोड़ा जैसे हाथी का बच्चा कमलदंड को तोड़ देता है। 'तहाँ राम रघुवंशमनि सुनहु महामहिपाल। भंजेउ चाप प्रयास बिनु जिमि गंज पंकज नाल।।' कवितावली

रामायण में कहा- नहीं। ऐसा है, शंकर भगवान ने इसको लड़कपन से शिक्षा दी थी, ट्रेनिंग दी थी, बताया था। प्रतिदिन शंकर भगवान इसके पढ़ाते थे। किसको? धनुष को हे धनुष, अभी तो ठीक है; सब काम कर लो, पर जब राम जी के कर-कमल का स्पर्श हो अपने आप टूट जाना, शरास्त मत करना।

'मयनमहनपुर दहन गहन जानि,
आनिके सबैको सार धनुष गढ़ायो है।
जनक सदसि जेते भले भले भूमिपाल,
कियो बलहीन बल आपनो बढ़ायो है।
कुलिश कठोर कूर्म पीठ ते कठिन अति,
काहूँ ना पिनाक नेकु चपरि चढ़ायो है।
तुलसी सों राम के सरोज पानि परसत,
टूट्यो मानों बारे ते पुरारि हूँ पढ़ायो है।।'

मयन महन माने कामदेव के शत्रु भगवान शंकर ने त्रिपुरासुर के दहन को कठिन जानकर सबके सार को लेकर धनुष बनवाया था। जनक सभा के सभी राजाओं की नाक काट दी थी इसने। यही धनुष राम जी के कर-कमलों के स्पर्श करते खट से टूट गया बिचारा! इस प्रकार- 'कमठ पीठ पबि कूट कठोरा। नृप समाज महँ शिव धनु तोरा।।' धनुष टूटा। 'शंकर चाप जहाज, सागर रघुबर बाहुबल। बूढ़े सकल समाज, चढ़े जे प्रथमहिं मोह वश।।' देवताओं ने फूलों की वर्षा की। बोल राजा रामचन्द्र भगवान की जय। यह अमानुष कर्म था। 'सकल अमानुष करम तुम्हारे।' और इसी प्रकार परशुराम का पराजय। परशुराम जी ने भगवान आनन्दकन्द को अपना तेज सौंपा, सीता जी का विवाह और चतुर्दश वर्ष वनवास यात्रा के बाद फिर रामचन्द्र जी एकमात्र भारत के नहीं अब विश्व के राजा बने। प्रभु को प्रणाम करके अब यहीं विश्राम।

सियावर रामचन्द्र भगवान की जय। सनातन धर्म की जय। पवनसुत हनुमान जी महाराज की जय।

□□□

रक्षार्थ वेदानां चाध्येयं व्याकरणम्

□ पूज्यपाद जगद्गुरु जी

महर्षि पतञ्जलि ने पाणिनीय सूत्रों के भाष्य के प्रारम्भ में एक प्रतिज्ञा वाक्य पढ़ा 'रक्षार्थ वेदानां चाध्येयं व्याकरणम्' अर्थात् वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण का पढ़ना आवश्यक है। इसके पोषण में उन्होंने एक पक्ष प्रस्तुत किया जिसमें यह कहा कि सम्पूर्ण वैदिक मन्त्र सभी विभक्तियों में निर्दिष्ट नहीं किये जाते। एक संकेत से व्याकरण के आधार पर अन्य मन्त्रों में भी वाक्य अभिहित होते हैं। वह ऊहन व्याकरणाध्ययन के बिना सम्भव नहीं हो पाता। कभी कभी स्वरों के आधार पर भी मन्त्रों के अर्थों का निर्धारण होता है। इस प्रकार उनका कथन उन्हीं के द्वारा पूर्णरूप से परिपोषित हो जाता है कि व्याकरणाध्ययन के बिना वेद की रक्षा सम्भव नहीं है। परन्तु उक्त वाक्य में प्रयुक्त चकार की क्या उपयोगिता है इस रहस्य का महर्षि ने उद्घाटन नहीं किया। आइये आज इस पक्ष पर भी एक विचार करें। 'रक्षार्थ वेदानां चाध्येयं व्याकरणम्' इसमें चकार का यह अर्थ है कि वेदों की एवं वेदसम्मत सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय की रक्षा के लिए व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है। उदाहरणार्थ आज हम गीता जी के एक विशिष्ट श्लोक की ओर सुधी पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहेंगे। यह तथ्य सर्वविदित है कि श्रीमद्-भगवद्गीता विश्व के समस्त प्राच्य और प्रतीच्य विद्वानों के लिए आदणीय हैं। ऐसा इसलिए नहीं है कि गीता जी भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा कही गई प्रत्युत ऐसा इसलिए है कि श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान ने जो कुछ कहा वह अक्षरशः वेदसम्मत और वेदानुमोदित है। कदाचित् भगवान् वहाँ वेद के विरुद्ध कहते तो गीता जी भी धम्मपद आदि ग्रन्थों की भाँति अनादरणीय और

उपेक्षित हो जातीं। इस प्रकार की अवधारणा के रहने पर भी गीता जी के द्वितीय अध्याय का पैतालीसवाँ श्लोक सामान्य रूप से पढ़ने पर हमारी सर्वमान्य अवधारणा को ठेस पहुँचाता हुआ प्रतीत होता है-

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।

गीता २/४५

अर्थात् हे अर्जुन! वेद त्रैगुण्य विषयक हैं इनमें सत्त्व, रज, तम का विवेचन हुआ है अतः तुम निस्त्रैगुण्य हो जाओ अर्थात् तीनों गुणों को छोड़ दो। इससे तो यही लगता है कि भगवान का मन्तव्य है कि चूँकि वेद तीनों गुणों का वर्णन करते हैं अतः तीनों गुणों के साथ वेदों को भी छोड़ दो। इसी प्रकार का अर्थ आद्य शंकराचार्य से लेकर अद्यावधि लिखे गये सभी भाष्यग्रन्थों एवं टीकाग्रन्थों में उपलब्ध है। यहाँ पर यह विषय विचारणीय है कि जो वेद भगवान के निश्वासभूत हैं, जिनकी रक्षा के लिए भगवान स्वयं अनेक अवतार धारण करते हैं, यहाँ तक कि शंखासुर द्वारा वेदों का हरण कर लिए जाने पर शंखासुर का वध करने के लिए भगवान हयग्रीव अवतार लेते हैं। क्या वही भगवान अर्जुन को वेद छोड़ने की आज्ञा देंगे? क्या भगवान निस्त्रैगुण्यता की आज्ञा देकर अर्जुन को वेद के परित्याग की अनुमति देंगे? यदि नहीं, तो फिर यहाँ 'त्रैगुण्यविषया वेदाः' शब्दखण्ड का क्या अर्थ होगा? गीता जी के इस महत्त्वपूर्ण श्लोक की कैसे रक्षा होगी? हाँ, गीता जी के इस स्थल की रक्षा करने के लिए व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है। भाष्यटीकाकारों ने इस पर ध्यान क्यों नहीं दिया? कदाचित् मैंने भी अपने भाष्य में इस पर ध्यान नहीं

दिया होगा। यदि ऐसा हो गया होगा तो आइये गीता जी के इस स्थल की रक्षा का प्रकार देखिए 'त्रैगुण्यविषया वेदाः' इस वाक्यखण्ड में दो शब्द हैं- 'त्रैगुण्यविषया अवेदाः' यहाँ बहुब्रीहि नञ्गर्भ कर्मधारय है। अर्थात् न वेदाः अवेदाः, त्रैगुण्यं विषयः येषां ते त्रैगुण्यविषयाः त्रैगुण्यविषया एव अवेदाः वेदविरुद्धाः इति त्रैगुण्यविषयावेदाः अर्थात् जिनमें तीनों गुणों का वर्णन किया गया है वे वाक्य वेदों के विरुद्ध हैं। उन्हें छोड़कर तुम निस्त्रैगुण्य हो जाओ अर्थात् वेदानुमोदित सत्त्वरजस्तमस् से रहित मुझ परमात्मा श्रीकृष्ण के श्रीचरणकमल का चिन्तन करो। इस प्रकार व्याकरण में निर्दिष्ट बहुब्रीहि नञ् समास गर्भित कर्मधारय से सर्ववेदमयी गीता जी की रक्षा हो गई। इस प्रकार वेद के तथाकथित कट्टरवादी आर्यसमाजी का भी मुँह बन्द हो गया। यहाँ पर और भी पक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है कि यदि कोई कहे कि बहुब्रीहि गर्भ कर्मधारय समास करने पर 'अविमृष्ट विधेयांश' नामक साहित्यिक दोष उपस्थित होगा, क्योंकि त्रैगुण्य विषयत्व को यहाँ समास से ढक दिया गया। जैसा कि चन्द्रालोककार भी कहते हैं।

अविमृष्ट विधेयांश समासपिहिते विधौ।

तो इसके उत्तर में मेरा दूसरा विनम्र निवेदन सुनिये- यहाँ कर्मधारय समास करने की आवश्यकता नहीं है। त्रैगुण्यविषया अवेदाः इस प्रकार दो स्वतन्त्र पद होंगे। अर्थात् वेद के विरुद्ध वाक्यांश ही सत्त्वरजस्तमस् का वर्णन करके त्रैगुण्य को अपने वर्णन का विषय बनाते हैं। त्रैगुण्यविषया अवेदाः इस प्रकार दो शब्द होने पर भी विषय शब्द की उत्तरवर्ती जस् विभक्ति के सकार को रु करके 'भो भगो' इत्यादि सूत्र से रु को य करके पुनः 'लोपः शाकल्यस्य' सूत्र से यकार का लोप करके 'त्रैगुण्य विषयाः' शब्द को

'अवेदाः' शब्द से समास के बिना भी दीर्घ के द्वारा सन्धियुक्त कर दिया जायगा। यहाँ 'पूर्वत्रासिद्धम्' ८/२/१ के द्वारा य लोप असिद्ध नहीं होगा क्योंकि 'अमुना' शब्द की निष्पत्ति के लिए ना भाव की कर्तव्यता में मु भाव को असिद्धि से बचाने के लिए 'पूर्वत्रासिद्धम्' की प्रवृत्ति के वारणार्थ भगवान पाणिनि ने 'न मु ने' ८/२/३ सूत्र का प्रणयन किया अर्थात् ना भाव की कर्तव्यता में मु भाव असिद्ध नहीं होता 'पूर्वत्रासिद्धम्' रुक जाता है। इस परिस्थिति में यह विचार उठता है कि अमुना शब्द की सिद्धि के लिए पाणिनी को यह सूत्र क्यों बनाना पड़ा? जैसे अद्युना शब्द बनाने के लिए महर्षि ने 'अधुना' सूत्र की ही रचना कर दी उसी प्रकार यहाँ भी 'अमुना' सूत्र की रचना कर देने पर ऐसा न करके उन्होंने तीन पदों वाला 'न मु ने' सूत्र ही बना डाला। ऐसा करके उन्होंने यह संकेत भी किया कि मु भाव के अतिरिक्त भी कहीं कहीं 'पूर्वत्रासिद्धम्' प्रवृत्त नहीं होता। अतः न का अतिरिक्त योग विभाग भी किया जाता है और उसका अर्थ होता है क्वचित् पूर्वत्रासिद्धम् न। उसी योग विभाग के सामर्थ्य से दीर्घ के प्रकरण में भी यह अर्थ करना पड़ेगा कि दीर्घ कर्तव्ये पूर्वत्रासिद्धम् न अर्थात् य लोप न असिद्धः। अब यहाँ य लोप सिद्ध नहीं हुआ और दीर्घ हो गया। इस दृष्टि से अब यह अर्थ निर्विघ्न सिद्ध हो गया कि 'अवेदाः त्रैगुण्यविषया' अर्थात् जो भी त्रैगुण्य के विषय हैं, वे वेद विरुद्ध हैं। इस प्रक्रिया से गीता जी के दो और स्थलों की रक्षा हो गई-

हे कृष्ण हे यादव हे सखेति गीता ११/४१

हे सखे इति इस प्रकार विच्छेद करके सन्धि करने पर अयादेश यकार का लोप और पुनः गुण नहीं सम्भव हो सकेगा। क्योंकि यहाँ भी षष्ठाध्याय के गुण की कर्तव्यता में त्रिपादी य लोप सिद्ध होने

लगेगा फिर हे सखे इति हे सखेति यह शब्द कैसे सिद्ध हो सकेगा। यहाँ भी 'न मु ने' 'पूर्वत्रासिद्धम्' सूत्र नहीं प्रवृत्त होगा और यकार लोप की असिद्धि रुक जायगी और हे सखेति शुद्ध रूप से सिद्ध होगा। इसी प्रकार 'प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्' (गीता ११/४४) श्लोक की समस्या का भी समाधान हो जायगा। जो पूर्व के आचार्यों के संशय का विषय बनता आ रहा है। यद्यपि आद्यशंकराचार्य जी ने 'प्रियायार्हसि' में षष्ठी को माना प्रियाया अर्हसि कहकर विच्छेद भी किया परन्तु यहाँ भी उन्होंने यकार लोप की असिद्धि रोकने का कोई उपाय नहीं सुझाया। कदाचित् उनके मन में 'आर्षत्वात्' समाधान रहा होगा। जबकि यह अगतिक गति ही है। श्रीरामानुजाचार्य ने तो 'प्रियायार्हसि' में चतुर्थी मान ली 'प्रियाय अर्हसि'। मैं यहाँ निष्पक्ष रूप से प्रार्थना कर रहा हूँ कि श्रीरामानुजाचार्य जी का चतुर्थी पक्ष यहाँ उचित नहीं है। क्योंकि इसके पूर्व इसी श्लोक में दो बार षष्ठ्यन्त का प्रयोग हुआ है— 'पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः' (गीता ११/४४) यदि तीसरे चरण में दो बार षष्ठ्यन्त का प्रयोग हुआ है तो चतुर्थ चरण में भी षष्ठ्यन्त ही उचित है। अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान से कहते हैं कि 'प्रभो! पुत्रस्य पिता इव सख्युः सखा इव प्रियायाः प्रिय इव मे सोढुमर्हसि' जैसे पिता पुत्र के अपराध को, मित्र मित्र के अपराध को क्षमा करता है तथा पति पत्नी के अपराध को क्षमा करता है उसी प्रकार आप मेरे अपराधों को क्षमा कीजिए! यहाँ चतुर्थी का कोई औचित्य ही नहीं है। यहाँ अर्जुन ने भगवान को स्वयं का पुत्र, मित्र और मधुर भाव में प्रिया भी मान लिया। कदाचित् भगवान ने भी सोचा होगा कि देखो तो नब्बे वर्ष की अवस्था में एक वृद्ध पत्नी भी प्राप्त हो गई। इसी दृष्टि से तीनों सम्बन्धों का निर्वहण करते हुए भगवान ने अर्जुन को गीता जी के तीन सिद्धान्त

सुनाए। पुत्र की दृष्टि से गुह्य 'य इमं परमं गुह्यम्' (गीता १८/६८) मित्र की दृष्टि से गुह्यतर 'इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्यात् गुह्यतरं मया' (गीता १८/६३) और पत्नी की दृष्टि से 'सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः' (गीता १८/६४)। हाँ यहाँ षष्ठ्यन्त पक्ष ठीक तो है परन्तु 'आर्षत्वात्' कहना ठीक नहीं है। यहाँ भी मेरे पूर्वोक्त प्रकार से 'न मु ने' सूत्र के योग विभाग से ही 'प्रियाया अर्हसि' शब्द में दीर्घ करते समय यकार लोप की असिद्धि रुक जायगी। अर्थात् 'पूर्वत्रासिद्धम्' प्रवृत्त नहीं होगा। इसी प्रकार आदि काव्य वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड में कैकेयी द्वारा सीता जी के लिए वल्कल वस्त्र दिये जाने पर उसका निवारण करते हुए गुरुदेव वसिष्ठ जी कहते हैं कि सीता जी के लिए वल्कलविधान सम्मत नहीं है क्योंकि चक्रवर्ती जी ने इन्हें वनवास नहीं दिया है—

न चीरमस्याः प्रविधीयतेति

न्यवारयत् तद्वसनं वसिष्ठः (बा०रा० २/३३/३८)

'चीरम् अस्था न प्रविधीयते इति' यहाँ भी प्रविधीयते इति शब्द में सन्धि करते समय अयादेश और यकार का लोप करने पर षष्ठाध्यायी गुण की कर्तव्यता में 'न मु ने' सूत्र के योग विभाग से ही 'पूर्वत्रासिद्धम्' सूत्र के द्वारा की जा रही यकार लोप की असिद्धि रुक जायगी।

इस प्रकार पाणिनीय व्याकरण का अध्ययन भारतीय वाङ्मय में उठने वाली सभी समस्याओं का समाधान करते हुए भारत राष्ट्र की अखण्डता, एकता, सौहार्द और सार्वभौमता की प्रेरणा का सन्देश संवाहक भी बन जाता है और गीता जी का प्रत्येक शब्द भगवद् वाक्य होने के साथ-साथ वेदसम्मत सिद्ध होता हुआ सम्पूर्ण विश्व के विचारक बहनों और भाइयों की आस्था का केन्द्र बन जाता है।

॥श्री राघवः शन्तनोतु॥

□□□

कलियुग में राम-राज्य सम्भव है

□ श्री जगदीशप्रसाद गुप्त (जयपुर)

जी हाँ, आप दोनों बातें कह सकते हैं- “कलियुग में राम-राज्य सम्भव है; सम्भव नहीं है- कल्पना है, सपना है। राम-राज्य की स्थापना त्रेतायुग में हुई थी। त्रेतायुग में, भगवान श्रीराम ने अवतार लेकर पहिले दुष्टों का, राक्षसों का संहार किया, फिर ग्यारह हजार वर्ष तक अयोध्या में राज्य किया। अयोध्या नरेश, श्री चक्रवर्ती महाराज दशरथ के ज्येष्ठ-पुत्र, श्रीराम का राज्यकाल एक “राम-राज्य” के नाम से प्रसिद्ध हुआ और वह त्रेतायुग एक सतयुग बनकर “राम-राज्य” का पर्याय कहलाने लगा। गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी ने अपने रामचरितमानस में कहा है- “त्रेताँ भई कृतजुग कै करनी”

यद्यपि, कहने के लिए रघुवंश काल में राजतन्त्र स्थापित था और वंशानुगत शासन का क्रम चलता था, तथापि, वास्तव में शासन लोकतन्त्रीय भावनाओं से ओतप्रोत होता था। श्री चक्रवर्ती महाराज दशरथ दीर्घकाल तक श्वेत-छत्र के नीचे बैठकर कर्तव्य-पालन करते हुए वृद्ध हो गये और उनका शरीर विश्राम चाहने लगा। उन्होंने सभी मन्त्रियों तथा प्रजा-प्रतिनिधियों को राजसभा की विशेष बैठक में बुलाया और उनके सामने श्रीराम को युवराजपद पर अभिषेक करने का एक प्रस्ताव उनकी स्वीकृति हेतु रखा। सबने हर्षातिरेक में आसनों से एक साथ उठकर जय-ध्वनि की- “श्रीचक्रवर्ती महाराज की जय”! कुमार श्रीरामभद्र की जय! और कहा- “महाराज! सचमुच आप वृद्ध हो चुके हैं। अब श्रीराम को अवश्य युवराज बना दें। हम सब कमललोचन श्रीराम को गज के ऊपर छत्र चामर सहित बैठे देखकर कृतकृत्य होना चाहते हैं। आपके ज्येष्ठ कुमार की सद्गुणों में कहीं समता नहीं है। अपने महान सद्गुणों के कारण वे

प्रजा के प्राणप्रिय हो गए हैं। इस इक्ष्वाकुवंश में अब तक हुए सभी नरेशों से वे अपने दिव्य गुणों के कारण श्रेष्ठ हैं। श्रीराम को धर्मात्मा नहीं कहते बनता, धर्म श्रीराम को पाकर सनाथ हुआ है। प्रजा के सब लोग, स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध सायं-प्रातः अपनी उपासना के अनन्तर आराध्य से प्रार्थना करते हैं कि हम श्रीराम को अपना पालक देखें। आपके सम्मुख हम निःसंकोच कहते हैं कि हम वृद्ध जनों की एकमात्र अभिलाषा है कि श्रीराम को सिंहासनारूढ़ देखने तक हम अवश्य जीवित रहें। तत्पश्चात् कुलगुरु महर्षि वशिष्ठ जी की अनुमति ली और राज्याभिषेक की तैयारी होने लगी।

प्रभु-इच्छा से श्रीराम का राज्याभिषेक कैकेयी के वरदान के कारण नहीं हुआ और उन्हें चौदह वर्ष के वनवास पर जाना पड़ा। वे चौदह वर्ष बाद अयोध्या लौटे और उनका राज्याभिषेक हुआ। प्रभु श्रीराम के अभिषिक्त होते ही पृथ्वी शस्यवती हो गयी, भरपूर अन्न उत्पन्न होने लगा, सर्वत्र जल सुलभ हो गया, नदियाँ सब ऋतुओं में बहने लगी और वृक्ष-वनस्पतियों फल-फूलों से लद गई। स्त्रियों को वैधव्य का कष्ट नहीं उठाना पड़ता था। बूढ़े लोग जवानों का श्राद्ध नहीं करते थे किसी को कोई रोग नहीं होता था। खाने पीने की कमी नहीं होती थी। वृद्धावस्था नहीं आती थी। सभी सुखी रहते थे। श्रीराम का राज्य इतना सुखद शान्तिपूर्ण एवं सम्पन्न सिद्ध हुआ कि आज भी उसकी चर्चा होती रहती है और लोग चाहते हैं कि इस भारतभूमि में पुनः रामराज्य की स्थापना हो।

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्रीरामचरित-मानस में रामराज्य का अद्भुत वर्णन किया है-

राम राज बैठे त्रैलोका।
हरषित भए गए सब सोका।।
बयरु न कर काहू सन कोई।
राम प्रताप विषमता खोई।।
दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।
नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना।।

‘राम-राज्य’ का साधक तत्त्व है- राजा का आचरण। भगवान श्रीराम ने अपने आचरण के द्वारा ही उन आदर्शों के बीज बोये जिससे रामराज्य का विशाल वृक्ष उत्पन्न हुआ। उन्होंने अपने आचरण द्वारा प्रजा तथा समाज को आदर्श रूप में ढाला था। प्रजा के सुख-दुख का दायित्व राजा पर होता है। गोस्वामी तुलसीदास जी का तो यह निर्भ्रान्त मत है-

“जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।”

प्रजा के दुख का अर्थ है कि राजा अपने कर्तव्य से च्युत हो गया है- वह पालक नहीं, घातक बन गया है, वह रक्षक नहीं, भक्षक हो गया है।

इतिहास साक्षी है। राम-राज्य के बाद अनेक नामों से राजा हुए। उनमें कुछ अंश तक समानता रही, पूर्ण-रूपेण “राम-राज्य” नहीं हो पाये और राम-राज्य की कल्पना अभी तक अपूर्ण बनी हुई है। प्राचीन समय में, राजा-भोज हुए थे। उन्होंने बहुत चाहा कि उनका राज्य “राम-राज्य” से भी अधिक अच्छा राज्य “भोज-राज्य” कहलाए और रामकथा के समान भोज-कथा का ही प्रचार-प्रसार हो जाए। वे स्वयं विद्वान थे, काव्य मर्मज्ञ थे। राजसभा में पंडितों, कविजनों और गुणज्ञों का अधिकाधिक सम्मान होता था। राजा का सुयश चारों ओर फैला हुआ था। वे प्रशंसकों से घिरे रहते और अपनी प्रशंसा सुनने के आदी थे। दान-दक्षिणा के लोभी व चाटुकार प्रवृत्ति

के कविजनों ने उन्हें मिथ्या उपमा दे देकर उनकी निर्णयात्मक शक्ति नष्ट कर दीं उनका यह मिथ्या आत्म-सन्तोष था कि उनकी प्रजा एवं कर्मचारी वर्ग राम-राज्य की प्रजा एवं कर्मचारियों से किसी तरह कम नहीं और उनका राज्य पूर्ण-रूपेण राम-राज्य है। प्रभु कृपा से, एक दिन उनका राम-राज्य का भ्रम एक घटित घटना से भंग हो गया और स्वयं सच्चे राम-भक्त बनकर राम-राज्य की ओर प्रयत्नशील हुए।

घटना है, एक चारण कवि ने राज भोज की आज्ञा पाकर राज-सभा में उन्हें प्रशस्ति काव्य सुनाना प्रारम्भ किया-

उदित भये द्वै सूर्य सम, जग तम नाशन हेतु।
एक भोज हैं भूपति, दूजे रघुकुल केतु।। कविराज अपना मुख खोल, गा ही रहे थे कि उसी समय एक कौवा उड़ता हुआ सभा-भवन में आया और कवि के मुँह में विष्ठा (बीट) कर दी, फिर पास के एक वृक्ष पर बैठ गया। प्रशस्ति काव्य पूरा नहीं हुआ। कविराज थू थू कर जल लेकर कुल्ला करने लगे। श्रोताओं में से कुछ हँसने लगे और कुछ सभ्य लोग मौन रहे लेकिन प्रशंसा सुनते सुनते स्वयं को महान समझने वाले राजा भोज को क्रोध हुआ और कौआ को जिन्दा पकड़ने का आदेश दिया। चिड़ीमारों ने जाल बिछाकर कौआ को पकड़ा और एक पिंजड़ में बन्द कर राजा भोज के समक्ष उपस्थित किया। राजाज्ञा हुई कि कवि का अपमान करने वाले कौवा की गर्दन उड़ा दी जाये। कौवा राजाज्ञा को सुनकर बोलने लगा- राजन्! न्याय के नाम पर आप अन्याय कर रहे हैं। आपने अपने अपराधी को निर्दोष सिद्ध करने का अवसर भी नहीं दिया। राजा भोज कहने लगे- “काक महाशय! मेरे अतिथि का अपमान कर निर्दोषता सिद्ध करना चाहते हो? कहिए।” निर्भीक कौवा बोला- राजन्! आपके कवि महोदय ने प्रलोभन एवं स्वार्थवश

आपको सूर्य और भगवान की उपमा देकर आपकी मिथ्या प्रशंसा की है। रघुकुल-भूषण सूर्यसम श्रीराम से आपकी क्या समानता है, आप प्रशंसा-प्रिय एक सामान्य राजा हैं। मिथ्या प्रशंसक का मुँह अपवित्र होता है और अपवित्र स्थान पर विष्ठा करना कोई अपराध नहीं बनता। राजन्! यही नहीं, अपनी प्रशंसा स्वयं करना या सुनना भी महापाप है। आपको तो प्रशंसा सुनने का व्यसन है और इस कारण से आप अभिमानी भी हो गए हैं। सूर्य समान प्रतापी व शक्तिमान राजा निरभिमानी, विनम्र एवं आत्मनिष्ठ होते हैं, जैसे भगवान श्रीराम थे और आप में इन गुणों का अंशांश भी नहीं है, नितान्त अभाव है। राजन्! आप स्वयं चिन्तन करें, विचार करें।

जीवन में प्रथम बार, राजा भोज को न्यायोचित सत्य एवं स्पष्ट-वाणी सुनने को मिली; वे अत्यधिक प्रभावित हुए। कौवे को निरपराध घोषित कर, राजा भोज ने सविनय प्रार्थना की-“पक्षिराज! कौवे के वेष में आप संत-मुनि हैं, मेरा उद्धार करने आये हो। मेरी आँखें खोल दी हैं। कृपया, मुझे बताइये कि मेरा राज्य “राम-राज्य” कैसे बने? राम-राज्य का नमूना आज भी देखने को मिल सके तो कृपया, दिखाइये।” कौवे ने कहा- “राजन्!” रामराज्य के लिए भगवान राम के आदर्श गुणों एवं चरित्र को हृदयंगम करने की आवश्यकता है- ‘रामस्य चरितं ग्राह्यम्’ रामराज्य में प्रजाजन कैसे सुखी और सन्तुष्ट थे, इसका नमूना त्रेतायुग की प्राचीन अयोध्या में देखने को मिलेगा। उस अयोध्या को यवनों ने नष्ट कर दिया और वह स्थान बीहड़ जंगल के रूप में है। फिर भी उस स्थान पर राम-राज्य की एक आदर्श झलक देख सकते हैं।” इतना कहकर, वह कौवा राजा भोज को, उनके विश्वासपात्र मंत्रिमंडल और सेवकों सहित, साथ लेकर निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा। वहाँ पर खुदाई कराई गई,

कुछ गहराई पर एक गुफा का प्रवेश द्वार दिखा। चार विश्वासपात्र मन्त्रियों के साथ, राजा भोज को कौवा ने उस गुफा में प्रवेश कराया और गुफा के मध्य चौक में एक स्वर्णथाल में भरे हुए दिव्य रत्नों से रंगीन प्रकाश जगमगा रहा था। कौवे की सलाह से, राजा भोज ने अपने चार विश्वासपात्र मन्त्रियों से उस थाल को उठवाकर सभी गुफा के बाहर आ गए और थाल को एक उच्चासन पर रखवा दिया। तत्पश्चात्, कौवे ने कहा- “राजन्! अब आप भगवान राम के चरित्र और उनके प्रजाजनों की आर्थिक, नैतिक एवं धार्मिक परिस्थिति का यथार्थ दिग्दर्शन करें। रत्नों से भरा यह स्वर्णथाल राम-राज्य के समय का है। उनके नगर सेठ को पूर्वजन्म के दोष के कारण देर से पुत्र-प्राप्ति हुई थी। जन्मोत्सव पर स्वयं प्रभु श्रीराम और जगज्जननी माँ सीता ने नगर सेठ के घर जाकर पुत्र को आशीर्वाद दिया। नगर सेठ ने विदाई के समय भगवान श्रीराम के श्रीचरणों में यह थाल समर्पित किया था। भगवान श्रीराम ने उपहार स्वीकर कर, उन्हें अयोध्या के गरीबों को प्रसादरूप में बाँटने को कहा; उनका राजकोष भरा हुआ था। नगर सेठ को अयोध्या में रत्नों का लेने वाला कोई भी गरीब नहीं मिला। राम-राज्य में सभी सुखी और सन्तुष्ट थे। प्रभु श्रीराम को, यह जानकर कि उनके राज्य में एक भी दरिद्र मनुष्य नहीं है, अति प्रसन्नता हुई और उस थाल को अयोध्या के प्रवेश-द्वार के चौक में रखवा दिया, जिस किसी को आवश्यकता होगी, ले जायेगा; सम्भव है, शर्म के कारण किसी ने लेने का साहस न किया हो। यह थाल वहीं का वहीं रखा रहा, किसी ने एक रत्न भी नहीं उठाया। राजन्! यह था श्रीराम का चरित्र और प्रजाजनों की प्रतिष्ठा और रामराज्य की छोटी सी झलक। प्रजा का असन्तोष ही चोरी, लूट, छलकपट,

भ्रष्टाचार रिश्त को जन्म देता है। राजन्! आपका यह मानना कि आपकी प्रजा और कर्मचारी लोग राम-राज्य की प्रजा और कर्मचारियों से किसी तरह कम नहीं हैं और मंत्रीगण विश्वासपात्र हैं, मिथ्या आत्मसन्तोष है। विश्वास न हो तो अपने इन चार विश्वासपात्र मन्त्रियों की तलाशी लेकर स्वयं देख लें; इन्होंने अपने साथ चलते चलते ही इस थाल में से एक-एक बहुमूल्य मुक्ताफल की चोरी की है। “राजा कालस्य कारणम्” राजाही काल का कारण होता है।”

चारों विश्वासपात्र, मंत्री थर थर काँपने लगे। उन्होंने अपने कपड़ों में छिपाया हुआ एक-एक रत्न निकाल कर राजा के श्रीचरणों में रख दिया और क्षमा-याचना करने लगे। राजा भोज का अहंकार चूर चूर हो गया। राम राज्य के समय का रत्नों से भरा वह स्वर्ण-थाल पुनः वहीं भूगर्भ में रखवा दिया गया। सन्देह है, वह स्वर्ण-थाल इस कलियुग में सुरक्षित होगा?

इतने वर्षों के अन्तराल में, देश की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक स्थिति बिगड़ती ही गई। देश के रक्षक भक्षक बन गये, राष्ट्रीयता कोसों दूर चली गई, चरित्र और नैतिकता का नाम ही रह गया, और अब चारों ओर भ्रष्टाचार ही आच्छादित है- अपवाद नगण्य हैं। आज, राष्ट्रीयता से अनभिज्ञ ये राजनेता देश-द्रोही व भ्रष्टाचारी होकर लोकनायक बने हुए हैं। ये अपने हाथों से राजकोष से भारी वेतन-पेंशन, भत्ते, परिलाभ और अनेक प्रकार की सुख सुविधाएं उठाकर भी भ्रष्ट होते गये और अपनी अगली पीढ़ियों के लिए असीमित-संचय किया और कर रहे हैं। कोई कहने सुनने वाला नहीं है। देश के अधिकांश आचार्य, शिक्षाविद्, सन्त और समाज सुधारक भी इन्हीं नेताओं के माध्यम से सुख-सुविधाएं लेकर मौन हो गए हैं, इन्हीं में लिप्त हो गए हैं। हार्दिक पीड़ा होती है, इनके आचरण देख देखकर। क्या हो गया है इन्हें? किन शब्दों में इन्हें उच्चारित किया जाये, भूषित

किया जाये, शब्द-कोष भी साथ नहीं देते। एक क्रान्तिकारी सन्त ने यही कहा था- “सौ करोड़ से अधिक जन-संख्या वाले इस समस्त भारत-देश को सुधारने की आवश्यकता नहीं है; देश-प्रदेश की राजधानियों में बैठे ये कुछ राजनेता ही सुधर जायें, देश का सौभाग्य होगा।”

राम-राज्य के लिए चरित्र-निर्माण और राष्ट्रीयता की आवश्यकता है। राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने अपने महाकाव्य ‘साकेत’ में वर्णन किया है कि प्रभु- श्रीराम ने इस भूतल पर अवतार लेकर समाज के सामने आर्यों का आदर्श रखा धन के स्थान पर मानव-सम्बन्ध को विशेष महत्व दिया। उन्होंने समाज में सुख और शान्ति की स्थापना के लिए क्रान्ति का सन्देश दिया और भक्तजनों के विश्वास की रक्षा की। वे विश्व में नया वैभव व्याप्त कराने और मानव में ही ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा कराने के लिए ही आये थे। उन्होंने इस भूतल को स्वर्ग का सन्देश नहीं दिया, वरन उसे ही सुख, शान्ति, सौहार्द, प्रेम, दया आदि मानवोचित गुणों से परिपूर्ण करके स्वर्ग बनाया-

मैं आर्यों का आदर्श बताने आया,
जन सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया।
सुख-शान्ति-हेतु मैं क्रान्ति मचाने आया,
विश्वासी का विश्वास बचाने आया।।
भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
सन्देश यहाँ पर नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।।

‘साकेत’ के राम-राज्य में सभी मनुष्य इस प्रकार प्रेम से मिलकर रहते हैं, जैसे किसी वृक्ष के अनेक खिले हुए पुष्प-

एक तरु के विविध सुमनों से खिले,
पौरजन रहते परस्पर हैं मिले।

□□□

नवयुवकों से

□ डा० रामदेवप्रसाद सिंह 'देव'

अरविन्द हो विवेक हो
 मानवता का अभिषेक हो
 रमण हो रवीन्द्र हो
 तेग गुरु गोविन्द हो
 लाल, बाल, पाल हो
 भगत सिंह औ लाल हो
 खुदीराम बोस हो
 प्रचण्ड जनाक्रोश हो
 पटेल हो नरेन्द्र हो
 मोती हो महेन्द्र हो
 जवाहर हो राजेन्द्र हो
 सत् प्रेरणा के केन्द्र हो
 साक्षात् मूर्त शक्ति हो
 युग परिवर्तन की तुम
 अदम्य अभिव्यक्ति हो
 तुम 'चरैवेति चरैवेति'
 'उतिष्ठत जाग्रत.....'
 'सहनाववतु सहनौ भुनक्तु'
 'संगच्छध्वं संवदध्वं.....'

'माता भूमिः पुत्रोऽहम् प्रथिव्याः'
 'शृण्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्राः'
 आदि आर्ष मंत्रों का
 अनुरक्षण-स्मरण कर
 अनुशक्ति कर मनन कर
 एतद्देश प्रसूतस्य.....
 शिक्षेरन् प्रथिव्याः सर्वमानवाः
 महोद्घोष का प्रमाण कर
 मर्यादा पुरुषोत्तम के महान्
 मानवादशों का सर्वत्र
 सत्वर संविधान कर
 म्रियमाण मानवता को
 संजीवनी दान कर
 सबका कल्याण कर
 तूम भूल कर भी
 इस अध्यात्म योग भूमि पर
 भोग भ्रष्ट न बनो
 यह संतों की धरती है
 इस यथार्थ से आँखें न मुनो!

□□□

ब्रेल लिपि के आविष्कारक-श्रीलुई ब्रेल

□ संकलनकर्ता-श्री ललिताप्रसाद बडथवाल

अँधेरी दुनिया में ज्ञान का दीपक जलाने वाले व्यक्ति थे बोलोतेँ होए जिनका जन्म फ्रान्स में हुआ था। उन्होंने ही विश्व में प्रथम अन्ध विद्यालय की स्थापना की थी, दृष्टिहीनों की अँधेरी दुनिया में शिक्षा का प्रकाश फैलाने को जन्म लिया।

होए के इस विचार को और मजबूत आधार दिया दृष्टिहीन लुई ब्रेल ने। बचपन में ही किसी दुर्घटना में उनकी आँखों की ज्योति नष्ट हो गई थी और स्पर्श और ध्वनियों के माध्यम से उन्होंने प्राणियों की आवाजें पहिचानना सीखा कुछ बड़े होने पर लुई को होए के अन्ध विद्यालय में भर्ती करा दिया गया जहाँ छात्रों को अक्षरों की सामान्य आकृतियाँ कागज पर उभार कर उन्हें उंगली के स्पर्श से पहिचानना सिखाया जाता था। कालान्तर में लुई ब्रेल इसी स्कूल में अध्यापक बने। शिक्षक बनकर भी छात्र बने रहने का बोध ही उन्हें दृष्टिहीनों के लिए एक उन्नत विकल्प ढूँढने के लिए प्रेरित करता रहा। क्योंकि अपने छात्र जीवन में

ही उन्होंने अनुभव कर लिया था कि दृष्टिहीनों के लिए होए की विधि बहुत उपयोगी नहीं है।

एक नई लिपि के आविष्कार का सपना उनके मन में छात्र जीवन में ही जन्म ले चुका था। वे अपने स्कूल में हॉस्टल में रात में मोटे कागज पर बिन्दुओं के अक्षर बनाते और दिन में अपने मित्रों से उनकी पहचान करवाते। इस प्रकार पारस्परिक विचार मंथन में जो त्रुटियाँ सामने आतीं उन्हें रात में सुधारने का प्रयास करते और इस प्रकार लुई ने बहुत शीघ्र फ्रान्सीसी भाषा की वर्णमाला, विराम चिह्न गणित आदि की व्यवस्था को पढ़ने लिखने वाली लिपि विकसित कर डाली और संगीत की स्वर लिपियों पर भी वर्षों तक योजनाबद्ध ढंग से कार्य करते हुए सन् १८२५ तक पूरा कर लिया। ब्रेल लिपि की प्रथम पुस्तक विस्तृत विवरण के साथ सन् १८२९ में प्रकाशित हुई थी। इस प्रकार श्रीलुई ब्रेल सामान्य दृष्टिहीन व्यक्ति एक ऐतिहासिक पुरुष बन गये।

□□□

नारी उत्पीड़न

हमारे धर्मशास्त्रों में नारी को साक्षात् देवी दुर्गा का स्वरूप मानकर उनका सम्मान करने की प्रेरणा दी गई है। कहा गया है कि जिस घर में नारी की पूजा होती है वहीं देवता निवास करते हैं। अति भौतिकवाद के अंधानुकरण का यह दुष्परिणाम है कि धर्म-प्राण भारत में नारी को 'भोग्या-वस्तु' मानकर पग-पग पर उसका अपमान, उत्पीड़न किया जाने लगा है।

दूरदर्शन (टी०वी०) पर नारी को अर्द्धनग्न अवस्था में प्रदर्शित किया जाना, विज्ञापनों में नारी देह का प्रदर्शन हमारे घोर पतन का परिचायक है। नारी को मर्यादाविहीन बनाकर हम स्वयं उसकी गरिमा से खिलवाड़ कर रहे हैं। शालीनता और मर्यादा ही भारतीय नारी के आभूषण कहे गए हैं। अब 'नारी मुक्ति' के नाम पर, नर नारी समानता के नाम पर, जो कुकृत्य किए जा रहे हैं, उन्होंने नारी के सम्मान को तार-तार कर डाला है।

सभ्य व शिक्षित कहे जाने वाले समाज में भी अब दहेज के लिए बहुओं के उत्पीड़न की घटनाएँ होने लगी हैं इस घोर शर्मनाक व पापयुक्त प्रवृत्ति को रोका जाना नितांत आवश्यक है।

कुछ परिवारों में भ्रूण-परीक्षण करवाकर अजन्मी मासूम बालिकाओं की नृशंस हत्या की जाने लगी है। यह भ्रूण-हत्याएँ घोर नरक का कारण बनेंगी, यह अच्छी तरह सोच लेना चाहिए। भ्रूण हत्या से बढ़कर दूसरा कोई पाप-कर्म नहीं हो सकता।

□□□

श्री राघव कृपा

□ दासानुदास श्रीरघुनन्दनदास 'मौनी' वसिष्ठायनम् (हरिद्वार)

एक बार चले आओ मेरे राम प्राण प्यारे।
अब और न सताओ मेरे लोचनों के तारे।।
सब कुछ मैं छोड़ बैठा हूँ आपके सहारे।
“रघुनन्दन” जरातो सोचो तुम्हीं एक अब हमारे।।
कृपा बनाए रखना मेरे राम प्राण प्यारे।
“रघुनन्दन” जी रहा है बस आपके सहारे।।
नहीं देर अब लगाना हे कौसिला के बारे।
यह दास आ पड़ा है अब आपके ही द्वारे।।
मतवाली मीरा की तरह झूमते रहो श्याम के प्यार में।
प्रभु से प्रेम ही है सार इस असार संसार में।।
चले आते हैं श्याम भक्तों की एक ही पुकार में।
“रघुनन्दन” लुटा दो सर्वस उस प्यारे के प्यार में।

भगवान् कब, कहाँ, कैसे और किस पर अपनी
अकारण करुणा से उसे कृतार्थ कर दें यह केवल
वही अकारण करुणावरुणालय, वांछाकल्पतरु,
भक्तवत्सल, दीनबन्धु, दीनानाथ, कृपानिधान,
दयासिन्धु, राजीवलोचन परमपिता परमेश्वर ही जानते
हैं। भगवान् केवल भाव के भूखे हैं। भगवान् कहते हैं
कि “तुम अपना तन और धन संसार को दे दो मुझे
केवल अपना मन अर्पण करो मुझे तुम्हारा तन और
धन नहीं चाहिए क्योंकि वह तो मैंने ही तुम्हें दिया
है।” प्रभु गुणग्राही हैं अर्थात् अपने भक्तों एवं शरणागतों
के दोषों पर उनकी दृष्टि जाती ही नहीं है श्रीवैष्णव
कुलभूषण, श्रीहुलसीहर्षवर्धन, पूज्यपाद् गोस्वामी
श्रीतुलसीदास जी महाराज श्रीरामचरितमानस में लिखते
हैं।

व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन विगत विनोद।

सो अज प्रेम भक्ति बस कौशल्याकी गोद।।

ठीक यही दृश्य एक अर्धरात्रि स्वप्न में इस
दास को प्रभु की अकारण करुणा के परिणाम स्वरूप
दृष्टिगोचर हुआ। पूज्या बुआ जी जैसा कि सर्वविदित
है जिनके कुशल प्रबंधन एवं निर्देशन में बड़े-बड़े
कार्यक्रम सानंद सम्पन्न हो रहे हैं। जिनकी सेवा एवं
त्याग इतिहास के स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाएगा ऐसा

मेरा विश्वास है।” उन्हीं हम सबकी पूज्या बुआ जी
की गोद में श्रीबालरूप राघव जी विराजमान हैं। राघव
जू की बहुत छोटी उम्र है (लगभग दो, तीन वर्ष) शिर
पर काले-काले घुंघराले बाल, नीलमणि के समान
कांति, मस्तक पर सुन्दर तिलक, कानों में सुन्दर
कुण्डल, मन्द-मन्द मुस्कान आदि। उस दिव्य झाँकी
का भला कैसे बखान किया जा सकता है वह झाँकी
आज भी मेरे नेत्रों का विषय बनी हुई है। जिन प्रभु
का स्वप्न में भी योगियों को दर्शन प्राप्त नहीं होता
यह केवल उनका अकारण करुणा प्रसाद ही तो है।
प्रभु के प्रेमी यही तो चाहते हैं कि जीवन में एक बार
भी उस प्यारे का दर्शन लाभ प्राप्त हो जाए। भक्तों
की यही कामना रहती है कि भगवान् एक बार तो इन
नेत्रों के अतिथि बनें लेकिन ऐसा सौभाग्य जिस पर
श्री गुरु और गोविन्द दोनों प्रसन्न हो कम लोगों को ही
प्राप्त होता है। वह नर परम बड़भागी है जिन्हें श्रीगुरु
और श्रीगोविन्द की एक साथ कृपादृष्टि प्राप्त हो।

एक दिन जब यह शुभ और मंगलकारी स्वप्न
इस दास ने पूज्या बुआ जी को दूरभाष पर सुनाया तो
उन्होंने गद्गद कंठ से बार-बार यही वाक्य कहा
“राघव मेरी गोद में विराजमान होंगे ऐसा मेरा सौभाग्य
है।” सच है यही तो जीवन का परम लाभ है। ज्ञात हो
एक दिन श्रीवसिष्ठायनम् हरिद्वार में हमारे परमाराध्य
प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद् जगद्गुरु रामानन्दाचार्य
श्रीगुरुदेव भगवान् ने प्रसाद ग्रहण करते समय पूज्या
बुआ जी को शुभ आशीष दिया कि “आज मैं बहुत
प्रसन्न हूँ आपको श्रीराघव जू का दर्शन अवश्य प्राप्त
होगा” यद्यपि इस प्रकार के प्रसंगों को सार्वजनिक
नहीं किया जाता यहाँ मेरा लिखने का केवल इतना
ही तात्पर्य है कि जो भी प्रभु के प्रेमी इसे पढ़ें उनका
भगवान् में और अधिक प्रेम, भक्ति, अनुराग और
विश्वास दृढ़ हो इसी आशा और मंगलकामना के
साथ। सादर सप्रेम नमो राघवाय।

□□□

शिखा की वैज्ञानिक-रहस्यपूर्णता

□ पूज्य पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत विद्यावागीश

‘सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत् करोति न तत्कृतम्’।।

(कात्यायन स्मृति १/४)

श्रीगणेश के मङ्गलाचरण तथा उनका वैदिक देव होना वेदादि से सिद्ध करके हम हिन्दू धर्म के प्रसिद्ध आचार ‘शिखा’ पर पहले लिखना उचित समझते हैं, क्योंकि- हिन्दूजाति का बाह्य मुख्य चिह्न शिखा है। आजकल के हिन्दु नवयुवक शिखा के रखने से बहुत घबराते हैं, और उसके रखने के वैज्ञानिक प्रयोजन पूछा करते हैं।

लार्ड मैकाले के अनुयायी

(१) सन् १८३५ में लार्ड मैकाले हिन्दुस्थान में अंग्रेजी शिक्षा की योजना बना रहा था। उस समय उसके ये शब्द थे-

“हमें अपनी सब शक्ति लगाकर अवश्य ही ऐसा उद्योग करना चाहिये-जिससे इस देश में एक ऐसी जनश्रेणी पैदा हो जाय, जो हमारे और उन करोड़ों व्यक्तियों के बीच मध्यस्थ का काम करे, जिनपर हम शासन कर रहे हैं। अंग्रेजी शिक्षा-द्वारा एक ऐसा मनुष्यदल तैयार होगा, जो हाड़, मांस और लहू में भले ही हिन्दुस्तानी रहे, किन्तु आचार-विचार, खान-पान, रुचियों, रहन-सहन तथा दिल-दिमाग और बुद्धि में बिल्कुल अंग्रेज होगा”।

(Quoted in C.H.I. Vol VIP, 111)

यह सोचकर मैकाले ने भारतवर्ष में अंग्रेजी शिक्षा प्रारम्भ की। उसका फल उसने अपने पिता को लिखा था कि- वह शिक्षापद्धति जिसका आरम्भ

भारतीयों को दोगले अंग्रेज बनाने के लिए किया गया था, कितनी सफल हो रही है। मैकाले ने लिखा- ‘जो भी हिन्दु अंग्रेजी-शिक्षा ग्रहण कर लेता है, वह अपने धर्म में सच्ची श्रद्धा खो बैठता है। कुछ लोग केवल दिखावे के लिए उसे मानते हैं, अधिकतर एकेश्वरवादी और कुछ ईसाई हो जाते हैं। यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि- यदि हमारी शिक्षा की योजना का पूरी तरह अनुसरण किया गया; तो अबसे तीस वर्ष बाद हिन्दुस्तान में अच्छे-अच्छे घरानों में एक भी हिन्दु मूर्तिपूजक नहीं रहेगा।’

‘भारतवर्ष का बृहद् इतिहास’ (प्रथम भाग) पृष्ठ ६३ में आर्य समाज के अनुसन्धाता श्रीभगवद्दत्तजी ने लिखा है- ‘लार्ड वेण्टिङ्ग उन दिनों भारत का गवर्नर जनरल था। उसने मैकाले के प्रस्ताव के साथ पूर्ण सहानुभूति प्रकट की। अन्ततः मैकाले की नीति के अनुसार भारत में शिक्षा का प्रकार चलने लगा। अंग्रेज और जर्मन अध्यापक और महोपाध्याय भारत में आने लगे। उन्हीं की सिखाई विद्या वास्वतिक विद्या मानी जाने लगी। जो कोई सज्जन, भारतीय ढंग की बात करता था; उसे तर्क-विरुद्ध, विद्या-विरुद्ध, इतिहास-विरुद्ध, बुद्धिविरुद्ध, प्रमाणशून्य कहानी, अथवा मिथ्या कथा कहा जाने लगा। ये शब्द विदेशीय लेखकों और अध्यापकों ने अधिकाधिक प्रयुक्त किये। इसमें सन्देह नहीं-मैकाले ने भारतीयता को नष्ट करने की जो कूटनीति बनी थी; वह प्रभावशालिनी सिद्ध हुई। आज भारत में अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त लोगों की एक श्रेणी है, जो विचार और

रुचि आदि में पूरी तरह अंग्रेज हैं। उस श्रेणी में भारत के अनेक गण्यमान्य नेताओं की गणना हो सकती है।’

इसी पाश्चात्य शिक्षा में दीक्षित लोग यूरोप की सभ्यता के दास बन चुके हैं। इन्हें सिर पर चोटी रखने से लज्जा आती है। गले में यज्ञोपवीत पहनने से भार दीखता है। देवदर्शनार्थ देवमन्दिर में जाना इनके मत में मूर्खता की पराकाष्ठा है। चन्दन आदि अन्य हिन्दु चिह्न रखते घबराते हैं। नाम भी अपने जे०पी० चौधरी आदि अंग्रेजी शैली के रखते हैं। शिखा-यज्ञोपवीत आदि धार्मिक चिन्हों के लिए जो श्रद्धा एक गँवार भारतीय में है; वह बी० ए० ग्रेजुएट में नहीं।

यह लोग पवित्र संस्कृत भाषा को मृतभाषा कहते हैं। अपने आपको इस देश के आदिम निवासी न मानकर वैदेशिक मानते हैं। भारतीय होते हुए भी भारत से उनका प्रेम नहीं रहा। इस सारे अनर्थ का मूल पाश्चात्य शिक्षा है। जिस काम को औरङ्गजेब की तलवार की धार न कर पाई, वही इस पाश्चात्य शिक्षा से अनायास हो रहा है। लोगों का अपने धर्म से विश्वास, अपनी भाषा एवं प्राचीन वेषभूषा में आस्था दिनों-दिन घटती जा रही है। अंग्रेज चले गये पर अंग्रेजियत सुव्यवस्थित है। इसीलिए आज शिखा तथा यज्ञोपवीत आदि के प्रयोजनों को पूछने के लिए तरह तरह के प्रश्नों की झड़ी लगा दी जाती है। उस जिज्ञासा की पूर्त्यर्थ हमारी यह पुस्तक है। इसमें हम प्राचीन अर्वाचीन सब प्रकार के विचारों का सङ्कलन करेंगे।

(२) हमारे प्राचीन लोग पहले समय में धार्मिक चिन्हों के प्रयोजनों को न बताकर उनका अवलम्बन ‘धर्म’ कह दिया करते थे। उनका आशय यह था

कि-प्रयोजन बता देने पर नवीनता-प्रिय लोगों के दृष्टिकोण में उस नियम में कोई नवीनता नहीं रह जाती। उन लाभों को मानकर भी उन नियमों के अवलम्बन में उपेक्षा हो जाया करती है। इसका उदाहरण भी देख लीजिये। धार्मिक नियम यह था कि- रजस्वला स्त्री का स्पर्श नहीं करना चाहिये। धार्मिक दृष्टि स्थापित करने वालों ने इस नियम का यथावत् पालन किया; परन्तु नवशिक्षितों ने जब इस अस्पृश्यता के प्रयोजन पूछे और उनको उन्हें बतलाया गया; तब वे कहने लगे ये तो ठीक हैं; परन्तु हम उस स्त्री का स्पर्श क्यों न करें? उसके द्वारा रोटी क्यों न पकवावें? हम उसका अन्य उपयोग न लेंगे; परन्तु यह बात भी कुछ समय चली। फिर उसका विपरीत उपयोग होने लगा। फिर यथापूर्व उपयोग करके हानियों का विचार हटा दिया गया।

इस प्रकार सनातनधर्मानुसार हिन्दुजाति के सिर पर शिखा रखना वास्तव में अदृष्टमूलक ही है, उसमें दृष्ट प्रयोजनों की आवश्यकता सर्वथा नहीं; पर आजकल के अविश्वासी लोग बिना प्रयोजन जाने शिखा रखना छोड़कर सनातनधर्म को हानि पहुँचाने वाले न सिद्ध हो जावें, यह विचारकर उनकी जिज्ञासा पूर्त्यर्थ यथाशक्ति प्रयत्न किया जाता है।

शिखा बाह्य चिन्ह

(३) शिखा हिन्दु जातिका उपयोगी बाह्य चिह्न है। यद्यपि ‘न लिङ्गं धर्मकारणम्’ (मनु० ६/६६) चिह्न धर्म का कारण नहीं होता; तथापि यदि चिह्नमात्र भी न हो, तब लोकलज्जा आदि के न होने से पुरुष सर्वथा कर्तव्यहीन हो जावे। इस चिह्न के होने से ही हिन्दुओं में आज भी सन्ध्यातर्पण आदि कर्म सुरक्षित हैं। इस कारण उक्तवचन पर कुल्लूक भट्ट ने कहा

है- 'एतच्च धर्मप्राधान्यबोधनाय उक्तम्, न तु लिङ्ग-परित्यागार्थम्' अर्थात् धर्म को प्रधानता देने के लिये उक्त वचन है; धार्मिक चिह्न को छोड़ देने के लिए यह नहीं। आजकल हिन्दु लोग अपने चिह्न भी छोड़ रहे हैं, साथ ही धर्म भी छोड़ रहे हैं। कैसे जाना जाय कि ये हिन्दु हैं? मस्तक से तिलक मिटा दिया गया है, यज्ञोपवीत हटा दिया जा रहा है, धोती से लांग हटाई जा रही है; अब शेष बचा हुआ शिखा (चोटी) का चिह्न भी हटाया जा रहा है। शोक!!! क्या दशा होगी हिन्दु जाति की?

परन्तु लार्ड मैकाले की दूरदर्शिता उसके अपने विचार से भी बढ़ गई। अब तो यह हिन्दु जनश्रेणी अपने चिन्हों को छोड़ती हुई रूप-रंग में भी 'भारतीय' नहीं दीखती। अंग्रेज-मुस्लिम रमणियों को स्वीकार करती हुई रुधिर से भी वैदेशिक हो रही हुई दीख रही है। अंग्रेजों के चले जाने पर भी अंग्रेजियत नहीं गई। खेद!!! इन्हीं लार्ड मैकाले के मानसिक शिष्यों को अपने शिखा आदि चिह्न छोड़ता हुआ देखकर अन्य लोगों ने भी उनका अनुसरण किया। आज भी पूरा-पूरा तो उनका प्रभाव नहीं हुआ; अतः चोटी सर्वथा तो नहीं हटी; आज भी बहुत से शिखा-सूत्रधारी हैं ही। थोड़े लोगों ने शिखा छोड़ी है; उससे उनकी कहीं-कहीं हानि भी दिखाई पड़ जाती है। बम्बई में हिन्दु-मुसलमानों की लड़ाई में अनेक हिन्दु हिन्दुओं के द्वारा ही मार दिये गये जो चोटी ने होने से हिन्दुओं से मुसलमान समझ लिये गये थे।

(४) परन्तु कई लोग यह कहते हैं कि- 'शिखा के न होने से हम साम्प्रदायिक कलहों में मुसलमानों के समूह में निश्चिन्त होकर विचरेंगे; और उनसे हानि

न प्राप्त करेंगे।' पर इस प्रकार के पुरुष दूर से ही प्रणाम-योग्य हैं। बहुत खेद की बात है कि- इसी शिखा के बचाव के लिए महाराणा प्रताप ने तथा महाराष्ट्र-राष्ट्रपति शिवाजी ने, इस प्रकार दूसरे राजपूतों ने प्राणों को दाँव पर लगा दिया था, गुरु गोविन्द सिंह के लड़कों ने और बालक हकीकत राय ने अपने प्राणों की आहुति देने में भी देरी नहीं लगाई; उसी शिखा को यह लोग बिना ही किसी अत्याचार के स्वयं ही काट रहे हैं!

ऐ अंग्रेजी राज्य! हम तेरी मुक्तकंठ से प्रशंसा करेंगे। यदि आज मुसलमान सम्राट् औरङ्गजेब होता, तो वह हिन्दुओं की शिखा के काटने के लिए किये गये अपने अत्याचारों की स्वयं ही निन्दा करता और कहता कि-मैंने अत्याचार करने पर भी हिन्दुओं की शिखा कटवाने में सफलता प्राप्त नहीं की; और तू (अंग्रेजी-राज्य) ने बिना ही आत्याचार एवं बिना ही उसके रुकवाने के प्रचार के, हिन्दुओं से चोटी छुड़वा दी, बल्कि भारत-वर्ष से तेरे निकल जाने पर भी हिन्दु तथा उनके नेता भी आज भी उस चोटी का सिर पर रखना हास्यास्पद एवं 'जंगलीपन' समझते हैं।

आजकल के शिखा की उपेक्षा करने वाले जानते हैं कि- इसी शिखा के ही कारण हिन्दु जाति आज भी जीती है, धार्मिक परतन्त्रता को प्राप्त किये हुए भी सांस ले रही है। शिखा-विहीन जातियाँ क्रम से नाम भी विलुप्त करवा बैठी, और करवा लेंगी। यदि आप अपनी शिखा कटवाते हैं; तो शिखा कटवाने वाली अन्य जातियों की तरह आप भी कट जावेंगे। 'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः' (मनु० ८/१५)। इस शिखा के महत्त्व को आप कभी न भुलावें। जो

लोग फैशन के दास बनकर या उन जैसों से ठगे जाकर शिखा काट देते हैं; वे अवश्य भारी भूल करते हैं; पीछे उन्हें पछताना पड़ेगा। शिखा के ही एकछत्र राज्य की छाया में समस्त हिन्दु जाति की एकता हो सकती है।

शिखा सर्वव्यापक

(५) वैसे तो शिखा से कोई किसी भी रूप में छूटा हुआ नहीं है। मुसलमान लोग अपनी तुर्की टोपी पर काले धागे की बनाई चोटी को प्रकारान्तर से रखते ही हैं। यूरोपियन फौजियों के टोपी के ऊपर भी रुपहली वा पीतल की चमकदार शिखा हुआ ही करती है। इस प्रकार हैट पर भी शिखासदृशता दीखती है। राजाओं वा सेनानायकों के सिरों पर सुन्दर पक्षियों के पंख की बनाई 'कलगी' शिखा का ही तो दूसरा प्रकार है। थानेदार आदियों के पटके पर रुपहला वा सुनहरा गुच्छा शिखा ही तो है। किन्हीं के पटके (साफे) पर दीख रहा हुआ तुरा अथवा पटके के बीच में पड़ा पठानी कुल्ला ऊँची शिखा का ही तो बोध कराते हैं। किन्हीं की शिखा तो स्वराज्यान्दोलन से आन्दोलित होकर साफे की जेल में बन्द होना न सहती हुई सी, माथे के अग्रिम केशों के रूप में परिणत हो जाती है परन्तु वैध शिखा न होने से वैसे लोग उससे होने वाले लाभों को प्राप्त नहीं कर सकते। आजकल के अंग्रेजी बाल भी जिसमें पिछले बाल कान तक काटे जाते हैं, शेष रखे जाते हैं—शिखा का ही तो प्रकार है। दाक्षिणात्य लोग इससे उल्टी शिखा रखते हैं, सिर के अग्रिम बालों को काट देते हैं; शेष सब बालों की उनकी चोटी होती है।

न केवल मनुष्यों में ही, अपितु पक्षियों में भी

शिखा दीखती है। मोर 'शिखी' नाम से और कुक्कुट (मुर्गा) 'ताम्रचूड' नाम से प्रसिद्ध हैं ही। काष्ठकूट पक्षी की शिखा कैसी सुन्दर होती है। राज-सर्पों के सिर पर भी प्रकृति से दी हुई शिखा सुनी जाती है। पशुओं के सिर पर उभरे हुए सींग उनकी शिखा का बोध कराते हैं। शिखा के कारण ही ये पशु-पक्षी सौन्दर्य एवं कई प्रकार के गुणों को धारण करते हैं। अग्निदेवता भी शिखा धारण करने से 'शिखी' कहलाते हैं, जिनका उपासक सारा संसार है। इस विषय में आगे स्पष्टता की जायेगी।

इस प्रकार वृक्षों में प्रत्येक फल के, प्रत्येक शाखा एवं पुष्प के सिर पर भी शिखा दीखती है। शिखरी (पहाड़) का शिखर भी शिखा होने से ही होता है। 'शिखाया ह्रस्वश्च' (५/२/१०७) इस पाणिनिसूत्र से शिखा शब्द को ह्रस्व और 'र' प्रत्यय करने पर 'शिखर' बनता है, जिसका अर्थ है 'शिखा वाला'। शिखा सबसे ऊँची होती है, यह उसकी श्रेष्ठता का प्रमाण है। 'चोटी के विद्वान्' यह हिन्दी में 'मुहावरा' रूप से प्रयुक्त वाक्य भी शिखा को मुख्य बता रहा है। इस तरह स्थावर जङ्गमात्मक जगत् में जहाँ-तहाँ शिखा का साम्राज्य जिस-किसी रूप से दीखता ही है। परन्तु हिन्दु लोग नियमपूर्वक शिखा को रखते हैं और उसे धार्मिक चिह्न मानते हैं और उससे लाभ उठाते हैं। अन्य जातियाँ नियमपूर्वक शिखा को नहीं रखतीं, या अनियमित स्थान पर रखती हैं, इसलिए विशिष्ट लाभ को प्राप्त नहीं करती। परन्तु हिन्दु-जाति की शिखा धार्मिक चिह्न के साथ ही साथ जातीय संघटन एवं एकता प्रदर्शित करती हुई विशेष लाभ भी पहुँचाती है। क्रमशः.....

प्रेरणा का स्रोत है भगवान् श्रीराम का जीवन

चैत्र शुक्ल नवमी को ही रामनवमी कहा जाता है। इस दिन कौशल्या ने भगवान राम को जन्म दिया था। भारतीय जीवन में यह दिन पुण्य का पर्व माना जाता है। इस दिन व्रत भी रखा जाता है। इस व्रत की चारों जयंतियों में गणना है। भगवान रामचंद्र का जब जन्म हुआ, उस समय चैत्र शुक्ल नवमी, गुरुवार, पुष्य (या दूसरे मत से पुनर्वसु), मध्याह्न और कर्क लग्न था। उत्सव के दिन ये सब तो सदैव आ नहीं सकते, परंतु जन्माक्षर कई बार आ जाता है, अतः वह हो तो उसे अवश्य लेना चाहिए। महाकवि तुलसीदास जी ने भी इसी दिन से श्रीरामचरित मानस की रचना आरंभ की थी।

जगन्मोक्षदामोदर

व्रती को चाहिए कि व्रत के पहले दिन (चैत्र शुक्ल अष्टमी को) प्रातः स्नानादि से निवृत्त होकर भगवान रामचंद्र का स्मरण करे। दूसरे दिन (चैत्र शुक्ल नवमी को) ब्रह्म मुहूर्त में उठकर घर की साफ-सफाई कर नित्यकृत्य से निवृत्त होना चाहिए।

इसके पश्चात् गोमूत्र, गंगाजल या शुद्ध जल का घर में छिड़काव कर उसको पवित्र करना चाहिए। इसके बाद 'उपोष्य नवमी त्वद्य यामेष्वष्टसु राघव। तेन प्रीतो भव त्वं भो संसारात् त्राहि मां हरे।' मंत्र से भगवान के प्रति व्रत करने की भावना प्रकट करे। पश्चात् 'भगवत्प्रीतिकामनया (वामुकफल-प्राप्तिकामनया) श्रीरामजयन्तीव्रतमहं करिष्ये' यह संकल्प करके काम-क्रोध-मोहादि से वर्जित होकर व्रत करें। तत्पश्चात् मंदिर अथवा अपने मकान को ध्वजा-पताका, तोरण और बंदनवार आदि से सुशोभित करें। घर के उत्तर भाग में रंगीन कपड़े का

मंडप बनाएं और उसके अंदर सर्वतोभद्रमंडल की रचना करके उसके मध्य भाग में यथाविधि कलश स्थापना करें। कलश के ऊपर रामपंचायतन (जिसके मध्य में राम-सीता, दोनों पार्श्वों में भरत और शत्रुघ्न, पृष्ठ-प्रदेश में लक्ष्मण और पादतल में हनुमान जी) की सुवर्ण निर्मित मूर्ति अथवा चित्र की स्थापना करके उसका आवाहनादि षोडशोपचार पूजन करें। इसके पश्चात् विधि-विधान से संपूर्ण पूजन करें।

जगन्मोक्षदामोदर

इस दिन पूरे आठ पहर का व्रत रखना चाहिए। दिन भर भगवान का भजन-स्मरण, स्तोत्र-पाठ, हवन और उत्सव करें। इस दिन किसी पवित्र जगह स्नान करना चाहिए। इस दिन हमें संकल्प लेना चाहिए कि हम मर्यादा पुरुषोत्तम के चरित्र के आदर्शों को अपनाएंगे। प्रभु श्रीराम का चरित्र-श्रवणादि करते हुए जागरण करें।

दूसरे दिन (दशमी को) पारणा करके व्रत का विसर्जन करें। गरीबों और ब्राह्मणों को यथायोग्य दान देकर उन्हें भोजन कराएँ। इस दिन से हमें भगवान राम की गुरुसेवा, शरणागत की रक्षा, भ्रातृ प्रेम, मातृ-पितृ भक्ति, एक पत्नीव्रत, पवनसुत हनुमान व अंगद की स्वामिभक्ति, गिद्धराज की कर्तव्य-निष्ठा तथा गुह केवट आदि के चरित्रों की महानता को अपनाना चाहिए।

जगन्मोक्षदामोदर

यह व्रत नित्य नैमित्तिक और काम्य- तीन प्रकार का है। नित्य होने से इसे निष्काम भावना रखकर आजीवन किया जाए तो उसका अनंत और अमिट फल होता है। किसी निमित्त या कामना से यह व्रत

किया जाए तो उसका यथेष्ट फल मिलता है। भक्ति और विश्वास के साथ यह व्रत करने से उसका महान फल मिलता है।

जय राम जय राम जय राम

राम और कृष्ण भारतीय संस्कृति के आधारस्तंभ और भारतीय जनता के निष्ठा का केन्द्र हैं। राम और कृष्ण के रंग से भारत जितना रंगा हुआ नहीं है, उतना दूसरे किसी रंग से रंगा हुआ नहीं है। प्रत्येक भारतीय के हृदय पर उनका प्रेम शासन अभी भी चल रहा है। दूर-दूर से आती 'श्रीराम जय राम जय जय राम' और 'गोपालकृष्ण राधेकृष्ण' की धुन का उद्घोष इस बात का साक्षी है। राम हमारे जीवन में ओत-प्रोत होकर एकरूप हो गए हैं। भारत के देहातों में दो व्यक्ति रास्ते में आमने-सामने मिलते हैं तो परस्पर हाथ जोड़कर 'राम-नाम' या 'जय राम जी की' कहते हैं। 'राम राखे उसे कौन चाखे' इन शब्दों में भगवान की रक्षा शक्ति में मानव का दृढ़ विश्वास प्रतिबिम्बित होता है। 'राम राखे ऐसे रहो' इन शब्दों में सच्चे भक्त की समर्पण वृत्ति झलक दिखाई देती है। प्रभु विश्वास पर चलने वाला मानव, कार्य या संस्था के लिए 'राम भरोसे' शब्द प्रयोग हमारे यहाँ प्रचलित हैं। 'घट-घट में राम बसते हैं' यह शब्द समूह ईश्वर की सर्वव्यापकता का दर्शन कराता है। किसी भी सुव्यवस्थित और संपन्न राज्य व्यवस्था के लिए 'राम-राज्य' शब्द पर्याय हो गया है। इस तरह हमारे समग्र जीवन व्यवहार में श्रीराम ओतप्रोत हो गए हैं।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का जन्म चैत्र सुदी नवमी के दिन दोपहर और चिलचिलाती धूप में हुआ। जीव और जगत् जब आधि, व्याधि और उपाधि से तप्त हो जाते हैं, तब उन्हें शांति और सुख देने के लिए प्रेम, पावित्र्य और प्रसन्नता के पुंज प्रभु राम जन्म लेते हैं। राम का जन्मोत्सव भारत में स्थान-स्थान में धूमधाम से मनाया जाता है, क्योंकि उनके जन्म और

जीवन से सारे राष्ट्र को महनीय मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है। कौटुंबिक, सामाजिक, नैतिक और राजकीय 'मर्यादा' में रहकर भी 'पुरुष', 'उत्तम' किसी तरह हो सकता है, यह मर्यादा पुरुषोत्तम राम का जीवन हमें समझाता है। राम में देवत्व स्वयं राम ने निर्माण किया है। मानव उच्च ध्येय और आदर्श रखकर उन्नति प्राप्त कर सकता है, यह राम ने अपने जीवन के द्वारा बताया है और वैसा ही व्यक्ति भी देवत्व प्राप्त कर सकता है, इसकी प्रतीति महर्षि वाल्मीकि ने हमें कराई है। विकारों, विचारों और व्यवहारिक कार्यों में उन्होंने मानव की मर्यादा को नहीं छोड़ा इसलिए वे 'मर्यादा पुरुषोत्तम' कहलाए हैं। मानवमात्र राम बनने का ध्येय और आदर्श रखे इसलिए महर्षि वाल्मीकि ने श्रीराम का चरित्र-चित्रण किया है। सद्गुणों की परमोच्च सीमा और उसका समुच्चय यानी राम! 'ये गुण स्वयं में लाकर मैं राम बनूँगा- ऐसी महत्वाकांक्षा प्रत्येक मानव के मन में निर्माण करने के लिए ऋषि वाल्मीकि ने लेखनी हाथ में उठाई थी। धर्मपरायण श्रीराम की पालकी कंधे पर उठाकर आज सभी धन्यता का अनुभव करते हैं, क्योंकि राम दैवी संस्कृति के संरक्षक थे और देवी संपत्ति के गुणों से युक्त थे। आसुरी संस्कृति का नाश करने वालों को ही भारत देश सिर पर उठाकर नाचा है और उन्हें ही आम जनता ने अपने हृदय में चिरंतन स्थान दिया है, यह बात आज सभी को समझ लेने की आवश्यकता है। श्रीराम के जीवन में होने वाली देवी तेजस्विता और सांस्कृतिक अस्मिता राम को दिव्य शिक्षा के कारण मिली है। विश्वामित्र श्रीराम को ले गए थे यज्ञ के रक्षण के लिए, परन्तु वहाँ वे राम को अलग ही शिक्षा देते थे। राम के साथ बातें करते-करते उन्होंने राम को जीवन की शिक्षा दी। श्रीराम को मालूम भी नहीं पड़ कि वे कुछ पढ़ रहे हैं। विश्वामित्र को भी कभी नहीं लगा कि वे पढ़ा रहे हैं। इस तरह विश्वामित्र

प्रतिदिन राम के जीवनदीप में सांस्कृतिक प्रेमरूपी घी भरते रहे। एक अंतःकरण दूसरे अंतःकरण के पास बोले, इस प्रकार विश्वामित्र हृदय खोलकर राम के पास बोलते हैं। राम के जो सद्गुण थे, उनको भी आज के दिन समझ लेना चाहिए। जिसे राम बनने की इच्छा हो, जिसे नर से नारायण बनना हो, उसे राम का एक-एक गुण लेना चाहिए और उसे आत्मसात् करना चाहिए, तभी वह सचमुच एक दिन 'रामो भूत्वा रामं यजेत्' राम बनकर राम की पूजा करेगा। राम हम सबके सामने एक कौटुंबिक आदर्श रख गए हैं। राम के और तीन भाई थे, फिर भी उनके बीच झगड़ा हुआ ऐसा कहीं पढ़ने में नहीं आया है, क्योंकि त्याग में आगे और भोग में पीछे उनका जीवन का मंत्र था। स्वार्थ त्याग की पराकाष्ठा अर्थात् राम। जहाँ हमेशा दूसरे का विचार किया जाता है, त्याग करने की तत्परता होती है, वहाँ से क्लेश-कलह सैकड़ों योजन दूर रहते हैं। राम की मातृ-पितृ भक्ति तो सचमुच अनुकरणीय है। वन में जाने की पिता की आज्ञा का लेशमात्र दुःख या हिचकिचाहट के बिना पालन करते हैं। राज्याभिषेक की बात सुनने पर या वन में जाने का आदेश मिलने पर भी राम के चेहरे के भाव एक समान ही थे। कहाँ वसुंधरा का राज्य और कहाँ वनवास! वाल्मीकि कहते हैं 'श्रुत्वा न विव्यथे रामः' वनवास की आज्ञा सुनकर राम जरा भी व्यथित नहीं हुए। उनके संबंध में कहा जाता है कि-

**'आहूतस्याभिषेकाय विमुष्टस्य वनाय च।
न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकारविभ्रमः॥'**

वे पिता का शब्द तत्काल मान्य करते हैं। राम प्रहर' इसलिए भी कहा जाता है। अधिकतर लोग इस समय प्रसन्न होते हैं। जिस कैकयी माता के कारण यह प्रसंग उपस्थित हुआ, उसी माता को, उसके प्रति जरा भी द्वेष, मत्सर न रखकर राम नमस्कार करने जाते हैं और पहले जैसा ही प्रेम रखकर बोलते हैं। यह घटना राम के चरित्र की भव्यता का दर्शन कराती

है। राम-सुग्रीव की मैत्री भी आदर्श थी। 'आप जैसे मित्र कचित् ही हों- 'सुहृदो वा भवद्विधाः' ऐसा राम सुग्रीव को कहते हैं। एक दूसरे की शक्ति का ज्ञान पूर्ण रीति से जानने वाले राम और सुग्रीव एक दूसरे का काम उमंग से करते हैं। बालि को मारने में राम सुग्रीव की सहायता करते हैं और रावण को मारकर सीता वापस लाने के काम में सुग्रीव सहायता करता है। सुग्रीव पर राम का बहुत प्रेम था। सुग्रीव से भी उन्होंने अभेद भावना साधी थी। सुग्रीव को जरा भी दुःख हुआ तो राम की आंखों में आँसू आते थे। राम ने अपने में और सुग्रीव में तनिक भी अन्तर नहीं रखा, मारीच उदात्तता और भव्यता का वर्णन करते हुए कहा है, 'मित्र हो तो भी राम जैसा और शत्रु हो तो भी राम जैसा ही।' रावण की मृत्यु के बाद विभीषण रावण का अग्नि संस्कार करने से इंकार करता है, तब राम उसे कहते हैं, 'मृत्यु के साथ वैर खत्म होता है, इसलिए भाई को शोभा दे ऐसा उनका अग्नि संस्कार करो। तुम नहीं करोगे तो मैं करूँगा।

राम को अपनी जन्मभूमि बहुत प्रिय थी। बालि को मारने के बाद किष्किंधा का राज्य वे सुग्रीव को दे देते हैं और रावण को मारने के बाद लंका का राज्य विभीषण को दे देते हैं। यह देश सुन्दर थे, लेकिन राम को उनका न लाभ हुआ न मोह। 'दुर्लभं भारते जन्म।' जिस भूमि में जन्म दुर्लभ है, उस भूमि में जन्म मिलने पर उसकी महत्ता कौन समझाएगा? राम के उपासकों का यही काम है। रामनवमी के दिन इस कार्य के लिए कटिबद्ध हों।

मानव मात्र को प्रेरणा और प्रोत्साहन देने वाले, सागर जैसे गंभीर, आकाश जैसे विशाल और हिमालय जैसे उदात्त श्रीराम के जीवन का विचार करके उनके गुणों को जीवन में लाने के लिए उनके विचारों तथा संस्कृति को समाज में टिकाए रखने के लिए कृतनिश्चयी बनें, तभी रामनवमी सच्चे अर्थ में मनाई गई कह सकते हैं।

('स्वतंत्र वार्ता' समाचार पत्र से साभार)

ताली बजाइये, स्वस्थ रहिये

□ डॉ० श्री एच्० एस्० गुगालिया

ज्यों-ज्यों भौतिक सुख-सुविधाओं का बाहुल्य होता जा रहा है, त्यों-त्यों हमारी कंचन-काया नाना प्रकार के रोगों से ग्रस्त होती जा रही है। नये-नये अन्वेषण हो रहे हैं। और नयी-नयी बीमारियों के काय चिकित्सक एवं वैज्ञानिक हमारे सामने प्रकट करते जा रहे हैं तथा उनकी चिकित्सा के लिये औषधियाँ भी प्रस्तुत करते जा रहे हैं। चिकित्साक्षेत्र में इतनी तथाकथित प्रगति के होते हुए भी हम प्रतिदिन ऐसे रोगों से ग्रस्त होते जा रहे हैं जो असाध्य से हो गये हैं। लगता यही है कि इस भोगवादी प्रवृत्ति का हमारी काया को रोगग्रस्त करने से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

यह एक विचारणीय प्रश्न है कि इतनी अधिक चिकित्सकीय सुविधाओं, चिकित्सालयों एवं चिकित्सकों के होने के बावजूद भी हम सही अर्थों में स्वस्थ क्यों नहीं रह पा रहे हैं? क्या हमने शारीरिक श्रम करना त्याग दिया है? इसका भी क्या इन बढ़ती बीमारियों से कुछ अन्तरङ्ग सम्बन्ध है? क्या चिकित्सक सही रूप से रोग की पहचान एवं निदान नहीं कर रहे हैं? क्या औषधियाँ रोगों का समूल नाश करने में प्रभावहीन हो गयी हैं? कहीं ऐसा तो नहीं है कि आधुनिक इलाज एक रोग को ठीक करते हैं और दूसरे रोगों की उत्पत्ति का कारण बनते हैं?

उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर यह समझ में आता है कि ये सभी कारण रोगों के स्थायी उपचार न कर पाने के लिये उत्तरदायी हैं। शरीर को अधिक आराम देना, कोई भी शारीरिक श्रम न करना, बिना विचार किये अधिक मात्रा में खाद्य-अखाद्य का सेवन करना, जानवर के समान दिनभर खाते रहना उचित आराम न करना, खाने के लिए जीना; शराब, अफीम, तम्बाकू, गाँजा, हशीश आदि हानिकर चीजों का सेवन करना-इत्यादि बातों का हमने जो नियमित क्रम बना लिया है वह हमारे रोगों के उपचारित न होने, बढ़ने, एक

रोग समाप्त न होने के पूर्व कई रोगों के उभर आने का मूल कारण है। कुछ दवाइयों की प्रतिक्रिया भी बहुत अंशों में इसके लिए जिम्मेदार है। हम अपनी धात्री-प्रकृति से दूर होते जा रहे हैं और हमारा अप्राकृतिक रहन-सहन हमारे शरीर को अंदर से जर्जर करता जा रहा है। अतः सावधान एवं जागरूक रहने की विशेष आवश्यकता है।

यदि हम स्वयं को पञ्चतत्त्वों से उपचारित करने की नैसर्गिक कला सीख लें तो पञ्चतत्त्वों से निर्मित इस काया को शायद ही किसी औषधि की आवश्यकता पड़े। प्राकृतिक आहार-विहार एवं व्यवहार रोगों को दूर करने का एक अनुभूत उपाय है। हमें तो मात्र इतना ही जाँचना है कि कौन सी वस्तु का उपयोग करने अथवा उसके सम्पर्क में आने से हम रोगाक्रान्त होते हैं और यह ज्ञात कर उससे स्वयं को दूर रक्षना रोग को दूर भगाने का सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

इसी के साथ ही कुछ शारीरिक परिचालन-क्रियाओं को अपनाकर भी हम रोगों को दूर रख सकते हैं। इन्हीं क्रियाओं में ताली-बजाना भी एक स्वास्थ्यवर्धक सहज प्रक्रिया है। प्राचीन काल से मन्दिरों में आरती, भजन-कीर्तन, पूजा आदि में हमारे पूर्वज लोग समवेतरूप से ताली बजाया करते थे। आज भले ही हम इसे महत्त्व न दें, किंतु शरीर को स्वस्थ रखने का यह एक अत्यन्त उत्कृष्ट साधन है। भारतीय साधना-पद्धति में ताली बजाना, एक मूलभूत जीवन-धारण की आवश्यक सामग्री य उपस्कर रहा है। इतना वैज्ञानिक, इतना सुसाध्य, इतना ससुगम और इतना प्रभावी न तो कोई व्यायाम है न योग साधना ही। सर्वश्रेष्ठ सहज योग-साधना का यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रयोग है।

‘ताली बजाइये और रोगों को दूर भगाइये’ यह

एक पुरानी कहावत है। अपने इष्ट या भगवान् का नाम-स्मरण करते हुए, नाम-जप करते हुए कीर्तन करते हुए, तालबद्ध ढंग से खूब ताली बजायें, जोरों से ताली बजायें और रोगों को दूर भगाते हुए इसका प्रभाव भी देखें। यह तन्मय होने एवं ध्यान लगाने का भी अत्युत्तम साधन है। ताली अपनी पूरी शक्ति से बजायें तो अत्युत्तम, अन्यथा जितनी जोर से आप बजा सकते हैं, जितनी तेजी से बजा सकते हैं, बजायें। इससे कोई हानि पहुँचने की सम्भावना नहीं है, लाभ-ही-लाभ है। अधिक ताकत से ताली बजाना आपको श्रान्त अवश्य कर देगा, किंतु उस स्थिति पर पहुँचने के पूर्व ही ताली बजाना बंद कर दें।

ताली बजाने से एक उत्कृष्ट प्रकार का व्यायाम हो जाता है, जिससे शरीर की निष्क्रियता समाप्त होकर उसमें क्रियाशीलता की वृद्धि होती है। शरीर के किसी भाग में रक्त-संचार में रुकावट या बाधा पड़ रही हो तो वह बाधा तुरंत समाप्त हो जाती है। इससे शरीर के अङ्ग सम्यक् रूप से कार्य करने लगते हैं। रक्त-वाहिकाएँ ठीक रीति से तत्परता के साथ शुद्धिकरण हेतु रक्त को हृदय की ओर ले जाने लगती हैं और उसको शुद्ध करने के अनन्तर सारे शरीर में शुद्ध रक्त पहुँचाती हैं। इससे हृदय-रोग, रक्त-नलिकाओं में रक्त का थक्का बनना समाप्त हो जाता है और भविष्य में हृदय या धमनियों की शल्य-क्रिया कराने की नौबत नहीं आने पाती। फेफड़ों में शुद्ध ओषजन की पर्याप्त मात्रा होने के कारण तथा अशुद्ध हवा का फेफड़ों की बीमारियों की भी समाप्ति हो जाती है। रक्त में लाल रक्त कणों की वृद्धि होती है, जिससे कई रोगों से मुक्ति मिल जाती है। हृदय ही नहीं सारी काया में शुद्ध रक्त का संचार सुव्यवस्थित रूप से होते रहने से रोगों का प्रभाव समाप्तप्राय हो जाता है और शरीर में चुस्ती, फुर्ती तथा ताजगी आ जाती है।

ताली बजाने से श्वेतरक्तकण सक्षम तथा सशक्त बन जाते हैं, जिससे शरीर की रोग-प्रतिरोधक क्षमता बहुत बढ़ जाती है। हम नीरोग होने लगते हैं। शरीर के

अधिकतम एक्कूप्रेशर प्वाइन्ट पैरों एवं हाथों में ही होते हैं। विशेषरूप से पैरों के तलवे एवं हाथों की हथेली में। ताली बजाने से हाथों के एक्कूप्रेशर केन्द्रों पर अच्छा दबाव पड़ता है और शरीर नीरोग होने लगता है। शुद्ध रक्त हृदय से पैरों तक पूरी क्षमता से दौड़ता है और पैरों के एक्कूप्रेशर केन्द्रों को भी शक्तिमय बना देता है, जिससे शरीर नीरोग बना रहता है।

पूरे शरीर में शक्ति-संचार करने, शरीर के संचालन को व्यवस्थित रखने तथा शरीर को रोग-मुक्त रखने का एक विशिष्ट साधन है-ताली बजाना।

किस रोग में कैसे ताली बजायी जाए और कितनी देर तक ताली बजायी जाए, इसका निर्धारण आपकी शारीरिक शक्ति एवं रोग जिसका उपचार किया जाना है, उसका आकलन करके ही हो सकता है। यदि आप सामान्य रूप से स्वस्थ हैं, तो खूब जोर से ताली बजायें और डॉक्टरों तथा दवाइयों के चंगुल से मुक्त रहें एवं दवाओं के साइड इफेक्ट्स से भी बचें।

ताली बजाने के कई भेद-विभेद हैं। अपने शरीर की शक्ति का अनुमान लगाकर उन तालियों को जो आपके लिए उपयुक्त हों, अपनाये। इस सहज-स्वाभाविक योग से मात्र कुछ दिनों में आप रोग को दूर करके, शरीर को अधिक न थकाते हुए बिना कुछ खर्च किये स्वयं को चुस्त, दुरुस्त एवं तन्दुरुस्त बनाये रख सकते हैं।

एक बार सही परामर्श ले लें कि आपको किस प्रकार इस ताली-योग-क्रिया को करना है, कैसे करना है, कब करना है एवं कितने समय तक करना है। फिर आप इसका बिना किसी व्यवधान के प्रयोग करते रहें। मात्र एक बार इसकी सही तकनीक समझनी है, फिर तो आप तनाव से मुक्त हो, रोग से दूर रहकर उत्तम स्वास्थ्यद्वारा अपने जीवन का सदुपयोग कर सकेंगे। मरण भी सहज-स्वाभाविक होगा, बिना किसी कष्ट के। चाहेंगे तो धन, भजन-पूजन, प्रभु-स्मरण भी आप बड़ी आसानी से इसके साथ कर सकेंगे। तो आइये, ताली बजाइये और सुख पाइये।

(कल्याण से साभार)

सुगम साधन : भगवद्भक्ति

मानव कल्याण के लिए सर्वसुगम साधन है- भगवान् की भक्ति करना। आज के घोर कलिकाल में योग-यज्ञ-तप आदि करना संभव नहीं है। इस युग में तो बस एकमात्र भगवद्भक्ति करने से ही हमारा कल्याण हो सकता है।

गोमाता की हत्या और निरीह पशुओं के रक्त से रंजित इस अपवित्र युग में योग-यज्ञ-तप आदि विधि-विधान से होना कठिन है। ब्रह्मवर्चस्व का अभाव, वर्णाश्रम-व्यवस्था का हास, आचार-विचार की उपेक्षा, शिखा-सूत्र से उदासीनता, खान-पान में असंयम, भाषा एवं वेश-भूषा में परानुकरण आदि बातों से दूषित आज के वातावरण में योग-यज्ञ, तप-त्याग आदि की साधना साधारण मानव के लिये सम्भव नहीं है। इसीलिये इस युग में एकमात्र श्री भगवन्नाम संकीर्तन, भगवन्नाम जप आदि सरल साधनों के माध्यम से भगवद्भक्ति श्रेयस्कर है यही हमारे कल्याण का सुगम और श्रेष्ठ साधन है।

भगवद्भक्ति का सुगम रूप है- भगवन्नाम का आश्रय! हम अहर्निश 'श्रीराम जय राम जय जय राम' का जप करें। कलिपावनावतार श्री तुलसीदास जी महाराज ने भी श्रीरामचरितमानस में भगवन्नाम का आश्रय ग्रहण करने की बात कही है-

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलम्बन एकू॥

कलियुग जोग न जग्य, न ज्ञाना। एक आधार राम गुन गाना॥

कलियुग केवल नाम अधारा। सुमरि सुमरि नर उतरहिं पारा॥

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते, हर समय श्रीराम-नाम या श्रीकृष्ण-नाम या श्री शिव-नाम का स्मरण, कीर्तन और चिंतन करना ही कल्याण का सर्वोत्तम सहज साधन है।

•••••

परलोक सुधारने के लिए परम आवश्यक है कि शुद्ध चित्त से श्रद्धापूर्वक श्रीहरि का जहाँ तक बन पड़े ध्यान, जप, कीर्तन करना चाहिए। धर्मशास्त्रों तथा धार्मिक साहित्य का अध्ययनमनन करके, सच्चे विद्वान, सदाचारी, विरक्त संत-महात्माओं के सत्संग में अधिक से अधिक समय बिताना चाहिए। सत्साहित्य का अवलोकन एवं प्रचार कर जनता-जनार्दन में भगवद्भक्ति की प्रेरणा जाग्रत करनी चाहिए। दुखियों व अभावग्रस्तों की सेवा-सहायता के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए, तभी हम अपना लोक-परलोक सुधार सकेंगे।

□□□

सत्संग तथा भगवन्नाम ही कल्याण का आधार है

सत्संग में, कथा-कीर्तन में, अवश्य भाग लेना चाहिए क्योंकि सत्संग करने और कथाएँ सुनने से ही परलोक का ज्ञान हो पाएगा, जीव पापों से बचेगा तथा पुनीत कर्म करके परलोक बनाने के कार्य में अग्रसर होगा। इसलिए सत्संग अवश्य करना चाहिए।

मानसकार गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज की उद्धोषणा है-

बिनु सत्संग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥

अतः हर क्षण सत्संग में बीते, कुसंग का कभी अवसर ही न मिले ऐसी भावना रखनी चाहिए।

हमारे धर्म-शास्त्रों के वचन अक्षरशः सत्य तथा कल्याणकारी हैं। धर्म की मर्यादानुसार जीवन जी कर ही हम लोक-परलोक दोनों का कल्याण करके अपना मानव-जीवन सार्थक कर सकते हैं। □□□

व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक

चैत्र शुक्लपक्ष/सूर्य उत्तरायण वसन्त ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	व्रत पर्व आदि विवरण
एकादशी	रविवार	श्लेषा	5 अप्रैल	कामदा एकादशी व्रत (सबका)
द्वादशी	सोमवार	मघा	6 अप्रैल	—
त्रयोदशी	मंगलवार	पू०फा०	7 अप्रैल	अनंग त्रयोदशी, भौम प्रदोष व्रत
चतुर्दशी	बुधवार	उ०फा०	8 अप्रैल	—
पूर्णिमा	गुरुवार	हस्त	9 अप्रैल	चैत्री पूर्णिमा सत्यनारायण पूजनम्

वैशाख कृष्णपक्ष/सूर्य उत्तरायण, वसन्त ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	व्रत पर्व आदि विवरण
प्रतिपदा	शुक्रवार	चित्रा	10 अप्रैल	—
द्वितीया	शनिवार	स्वाति	11 अप्रैल	—
तृतीया	रविवार	विशाखा	12 अप्रैल	—
चतुर्थी	सोमवार	अनुराधा	13 अप्रैल	श्रीगणेश चतुर्थी व्रत मेष संक्रान्ति पुण्य अगले दिन प्रातः तक
पंचमी	मंगलवार	ज्येष्ठा	14 अप्रैल	वैशाखी
षष्ठी	बुधवार	मूल	15 अप्रैल	ग्रीष्म ऋतु प्रारम्भ
सप्तमी	गुरुवार	पूर्वाषाढा	16 अप्रैल	—
अष्टमी	शुक्रवार	उ०षाढा	17 अप्रैल	कालाष्टमी व्रत
अष्टमी	शनिवार	उ०षाढा	18 अप्रैल	अष्टमी तिथि की वृद्धि
नवमी	रविवार	श्रवण	19 अप्रैल	पंचक प्रारम्भ रात 11/44 से
दशमी	सोमवार	धनिष्ठा	20 अप्रैल	—
एकादशी	मंगलवार	शतभिषा	21 अप्रैल	वरुथिनी एकादशी व्रत (सबका) वल्लभाचार्य जयन्ती
द्वादशी	बुधवार	पू०भाद्रपद	22 अप्रैल	प्रदोष व्रत
त्रयोदशी	गुरुवार	उ०भाद्रपद	23 अप्रैल	—
चतुर्दशी	शुक्रवार	रेवती	24 अप्रैल	पंचक समाप्त 2 बजे दिन में श्राद्ध की अमावस्या
अमावस्या	शनिवार	अश्विनी	25 अप्रैल	शनैश्चरी अमावस्या, श्रीशुकदेव जयन्ती

वैशाख शुक्लपक्ष/सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	व्रत पर्व आदि विवरण
प्रतिपदा	रविवार	भरणी	26 अप्रैल	चन्द्र दर्शनम् श्रीशिवाजी जयन्ती
द्वितीया	रविवार	भरणी	26 अप्रैल	द्वितीया तिथि का क्षय
तृतीया	सोमवार	कृतिका	27 अप्रैल	श्रीपरशुराम जयन्ती अक्षय तृतीया
चतुर्थी	मंगलवार	रोहिणी/मृग०	28 अप्रैल	श्रीगणेश चतुर्थी व्रत
पंचमी	बुधवार	आर्द्रा	29 अप्रैल	आद्य जगद्गुरु शंकराचार्य जयन्ती
षष्ठी	गुरुवार	पुनर्वसु	30 अप्रैल	श्री रामानुजाचार्य जयन्ती
सप्तमी	शुक्रवार	पुष्य	1 मई	श्री गंगा जन्म- गंगा सप्तमी
अष्टमी	शनिवार	श्लेषा	2 मई	श्री दुर्गाष्टमी
नवमी	रविवार	मघा	3 मई	श्रीजानकी जयन्ती महोत्सव
दशमी	सोमवार	पू०फा०	4 मई	—
एकादशी	मंगलवार	उ०फा०	5 मई	मोहिनी एकादशी व्रत (सबका)